प्रकाशकीय

आचार्य दादा धर्माधिकारी की यह रचना पाठकों को भेंट करते हुए हमें विशेष प्रसन्नता हो रही है।

इसके पहले हिन्दी के पाठक दादा की 'सर्वोदय-दर्शन' 'अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया' और 'स्त्री-पुरुष सहजीवन' जैसी विचार प्रेरक और मौलिक कृतियों से परिचित हो चुके हैं। प्रस्तुत 'मानवीय निष्ठा' पुस्तक में दादा के उन तेजस्वी और मूल्यगामी विचारों का दर्शन है, जो व्यक्ति को समष्टि की समग्रता का बोध कराते हैं। आज का मानव विज्ञान-सम्पन्न तो हो गया है और निरन्तर नव-नव उपलब्धियाँ करता जा रहा है लेकिन उसकी मानवता उसका विराट् व्यक्तित्व अनेक टुकड़ों में—वर्गों में विभाजित होता जा रहा है। दादा की इस कृति में अनेक दृष्टान्त और उदाहरण देकर समझाया गया है कि विश्व की अनेकानेक और उच्चतम उपलब्धियों से भी उच्चतम है मानव। मानव के प्रति हमारी निष्ठा अगर खण्डित होती है, तो उससे शक्ति क्षीण ही होती है।

श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर ने अपने आदि-वचन में ठीक ही कहा है कि "यह पुस्तक सर्वोदय के बुनियादी सिद्धान्तों का दर्पण है। दादा की 'हितं मनोहारि' शैली के कारण रस सदा ताजा बना रहता है।

सर्वोदय-विचार की विशेषता है कि वह हर प्रकार के वाद, पंथ या विचार के घेरे से अतीत है—शुद्ध मानवनिष्ठ विचार है। परन्तु अक्सर लोग जिनमें सर्वोदय-विचार की दुहाई देनेवाले भी शामिल हैं सर्वोदय को भी अमुक दायरे का विचार-दर्शन मान लेने की भूल कर बैठते हैं। दादा की शुद्ध व्याख्या से निरन्तर इस भ्रम का निराकरण होता रहता है।

यह पुस्तक मई १९६ में विश्वनीडम् (बेंगलोर) में दिये गये प्रवचनों से तैयार की गयी है। प्रवचन हिन्दी मे ही हुए थे। किन्तु प्रसन्नता की बात है कि सर्वप्रथम यह पुस्तक कन्नड़ भाषा में कर्नाटक प्रान्तीय गांधी स्मारक निधि की ओर से प्रकाशित हुई। इसके कन्नड़ अनुवाद और सम्पादन में श्री सिद्धवनहल्ली कृष्ण शर्मा ने स्नेहपूर्वक पर्याप्त श्रम किया था।

अब मूल हिन्दी प्रवचन इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं।

रवीन्द्र-अवन्ती

७-५- ६७

आदि-वचन

मनुष्य व्यक्ति के रूप में जन्म लेता है लेकिन सामाजिक बनकर जीता है। इसीलिए वह सामाजिक प्राणी कहलाता है। समाजरहित मानव का जीवन जीवन ही नहीं है। मानवीय जीवन के लिए समाज जरूरी है, सामाजिक जीवन के लिए मानव जरूरी है। इसलिए वे परस्पर सम्बन्धी एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। लेकिन जब से मानव का जन्म हुआ तथा जब से मानव-समाज की रचना हुई तभी से मानव के वैयक्तिक और सामाजिक-जीवन के बीच एक प्रकार का संघर्ष और विरोध बराबर चला आ रहा है।

यह संघर्ष मिटाकर जीवन में समन्वय और समरसता निर्माण करने के कई प्रयोग होते रहे हैं और कई सिद्धान्त बने हैं परन्तु वे सब अभी सफल नहीं हुए हैं। समृद्धि बढ़ी विज्ञान का विकास हुआ सुख-सुविधाओं के साधन बढ़े किन्तु व्यक्ति और समाज के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के बीच विरोध और कटुता कम न हुई। इस विषय की अर्वाचीन विचारधाराओं में सर्वोदय प्रमुख है। सर्वोदय-विचारधारा के प्रणेता थे गांधीजी और इसका प्रचार कर रहे हैं विनोबाजी। गांधीजी के सूत्रों का भाष्य विनोबाजी कर रहे हैं। इस भाष्य के दो पहलू हैं— एक सिद्धान्त दूसरा तदनुरूप व्यवहार। भूदान-ग्रामदान आदि को उसकी प्रक्रिया कह सकते हैं।

सर्वोदय एक ऐसा सिद्धान्त है जो अनेकविध विरोधों का शमन करने में प्रयत्नशील है। सत्य और अहिंसा अर्थात् हितों की एकता सिद्ध करनेवाला प्रेम (Love which brings about identity of interests) ही इस सिद्धान्त की बुनियाद है। सबका सब प्रकार से विकास हो सबके हित सधें यही इसका ध्येय है प्रेममय और अहिंसापूर्ण

रचनात्मक प्रवृत्तियाँ ही इसके साधन हैं। स्पष्ट है कि स्वार्थ का मोह घटाकर परार्थ का मूल्य बढ़ाने से ही इस प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ कार्यान्वित हो सकेंगी।

इन सिद्धान्तों का अर्थात् सर्वोदय-विचार का साहित्य इन दिनों काफी परिमाण में निर्मित हो रहा है, उसके बुनियादी तत्त्वों पर विभिन्न व्याख्याएँ और विवेचन निकल रहे हैं। मैं यह समझता हूँ कि इन सिद्धान्तों का स्पष्टता से सरल भाषा में दृष्टान्तों का हवाला देते हुए विशद विवेचन करने की कला में श्रीयुत दादा धर्माधिकारी सिद्धहस्त हैं। विद्यापीठम् (बेंगलोर) में इस विषय में दादा के कुछ प्रवचन सरल हिन्दी में हुए थे उनका संकलन इस पुस्तक में है। यह पुस्तक सर्वोदय के बुनियादी सिद्धान्तों का दर्पण है। आशा है, इससे सब लाभान्वित होंगे।*

बेंगलोर
१ २ ६२

—र० रा० दिवाकर

*कन्नड संस्करण की प्रस्तावना से अनूदित।

मानवीय निष्ठा

विषय सूची

हमारी कसौटी २

विचार-शिविरों में सह-अध्ययन मुख्य चीज है। अध्यापक या श्रवण नहीं। आपस में मिलकर मार्ग खोजने का प्रयास यहाँ होता है। शिविरार्थियों के पारस्परिक सहयोग से यह अध्ययन संपन्न होता है सामान्य नहीं संचालित होता है।

नेपोलियन सिकंदर, चीवर, कायजर, हैनिबाल हिटलर तथा साम्य वादी तानाशाहों की एक लंबी कतार है, जिसमें प्रत्येक ने सारी दुनिया को अपने कब्जे में कर लेने का प्रयत्न किया। उनकी भी आकांक्षा यही थी कि विश्व एक हो जाय उनकी मुट्ठी में सारा संसार समा जाय। बुद्ध ईसा आदि की भी आकांक्षा थी कि विश्व एक हो। पर विश्व के साथ उनकी आत्मा लीन हो जाय विश्व के या ईश्वर के मन में खुद लीन हो जाय।

दुनिया में ये दो प्रकार के संकल्प हैं। इससे दो प्रकार की प्रवृत्ति पैदा हुई। नेपोलियन ने पूछा था कि 'दुनिया के नक्शे में ईश्वर कहाँ है? यदि वह कहीं आसमान में रहता है तो उससे हमें कोई सरोकार नहीं है। आजकल साधारण मनुष्य भी यही कहता है। वह पूछता है कि विश्व में मैं कहाँ हूँ? कोरी कल्पना (Hypotheals) से क्या काम है?

ईश्वर और मनुष्य की बात छोड़ दें आजकल तो मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रत्यक्ष व्यवहार नहीं हो रहा है। क्योंकि इस ओर दूसरे देशों के बीच लोहे का परदा (Iron Curtaln) है चीन और बाकी विश्व के बीच बाँस का परदा (Bamboo Curtain) है और इसी प्रकार कई परदे बीच में पड़े हुए हैं। ये संप्रदाय संस्कार देवी-देवता पंथ संस्थान मंदिर—सब एक-एक परदे ही हैं।

मनुष्य की भूमिकाएँ (Roles) और शक्तियाँ (Capacities) विविध हैं अनेक हैं फिर भी मनुष्य-मनुष्य के बीच दीवार है, एक-दूसरे

का स्पर्श नहीं है। पुराने जमाने में युद्ध के समय हाथ मिलाते थे अब उन हाथों को लोहे का कवच (Gloves) पहना दिया है, हाथों का स्पर्श नहीं हो पाता है। छाती से लगायें तब भी स्पर्श नहीं होता है, क्योंकि वहाँ भी लोहे का कवच है। हृदय मिल नहीं पाते हैं हाथ तक मिलते नहीं। कहो हाथ मिल भी जायें लेकिन हृदय में स्पन्दन नहीं होता है। बीच में कुछ अंतराय आ गया है, मनुष्य का स्वभाव ही वैसा बन गया है।

साधारण मनुष्य योगी नहीं है। कोई नहीं जानता था कि मनुष्य आसमान में उड़ सकेगा। आज तो कुत्ता तक आकाश-यात्रा कर सकता है। समय बदल गया है। मनुष्य के हाथ-पैर की शक्ति बढ़ गयी है अब आसमान में उड़ सकता है। उसकी पहुँच चाँद तक हो रही है। गति भी बढ़ी है। केवल ८९ मिनट में वह संसार की परिक्रमा कर सकता है। शारीरिक शक्ति भी बढ़ी है। करण और उपकरणों की शक्ति तो असीम हो गयी है।

जब शरीर की मर्यादा सीमित नहीं रही। चित्त और दिमाग बाहर सीमित है। विज्ञान कहता है कि मनुष्य के स्वभाव से बुराई मिट नहीं सकती। स्थूल शरीर की शक्ति ही जब सीमित नहीं तब मन और चित्त की सीमा कहाँ है

जो विज्ञान कहता है कि मनुष्य का यही स्वभाव रहेगा वह वास्तविक विज्ञान नहीं है। वह कुण्ठित हो गया है। बाह्य इन्द्रियों की शक्ति यदि सीमित नहीं रहती तब मानसिक शक्ति कैसे सीमित रह सकती है? इसलिए चाहते हैं कि विचार वैज्ञानिक हो वस्तुनिष्ठ हो।

कहा जाता है कि स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ मन वास करता है। अमरीका और योरप में बीमारी नहीं है। फिर भी वहाँ वो भी जाय उस सूई लगाते हैं। लेकिन शरीर इतना स्वस्थ होते हुए भी वहाँ के लोगों का मन स्वस्थ नहीं है।

वहाँ शारीरिक रोगों के अस्पतालों की अपेक्षा मानसिक रोगों के दवाखाने अधिक हैं।

एक बात और कही जाती है — स्वच्छता ही पवित्रता है। गंदगी में पवित्रता नहीं रह सकती। आस्ट्रेलिया की सड़कों पर कागज का एक टुकड़ा भी नहीं दीखता। यहाँ तो कूड़े का ढेर पड़ा रहता है। वहाँ की सड़कें आइने की तरह स्वच्छ रहती हैं। फिर भी वहाँ पवित्रता नहीं है। इसके लिए विज्ञान के पास कोई जवाब नहीं है।

आज साम्यवादियों और समाजवादियों के सामने भी यह सवाल है। मंधूदीपाद कम्पानी माओ ख्रुश्चेव टीटो आदि सबके सामने यह सवाल है। हमें देखना है कि इस सवाल का समाधान खोजने में गांधी का रास्ता कहाँ तक मददगार होता है।

गांधी आया। उसने एक प्रकाश दिखाया। उसका जीवन ही उसके सिद्धांतों का व्यावहारिक स्वरूप है। लेकिन किसीका व्यवहार सत्य नहीं होता वह सदा मिथ्या है उससे कोई विचार सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि व्यवहार परिवर्तनशील है। इसलिए हमें यह देखना है कि कोई अपरिवर्तनशील मानदण्ड या कसौटी है जिससे विचार को परखा जा सके? गांधी ने वैसी एक कसौटी हमें दी है।

वह विज्ञान मिथ्या है जिसकी कोई कसौटी न हो। संसार में चाहे साम्यवाद आवे समाजवाद आवे या पूँजीवाद रहे सबकी एक कसौटी है। वह सबके लिए समान है। चीन के एक तत्त्वज्ञानी ने कहा है कि मनुष्य की कसौटी स्वयं मनुष्य ही है मनुष्य ही मनुष्यत्व का मापक यन्त्र है।

मनुष्यत्व ही वह कसौटी है। सारी प्रगति विकास या उत्थान की एकमात्र कसौटी मनुष्यत्व ही है यही सबका सत्य है। ○

५-५-६ प्रातः (प्रासंगिक)

तुलना वस्तु से विमुख बनाती है

मूलभूत विचार शुद्ध होना चाहिए। चित्त में कोई ग्रन्थि नहीं होनी चाहिए। ग्रन्थि रहती है, तो हम समस्या को देख नहीं सकते। हमें अपना ही चित्त दिखायी देगा। बंगलोर में एक बार हम लालबाग देखने गये। रात के वक्त काफी रोशनी थी। हमारे साथ एक भाई थे। वे कहने लगे कि वृन्दावन की रोशनी इससे अच्छी है। हमें लालबाग की रोशनी दिखायी दे रही थी वहाँ वृन्दावन की रोशनी का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं था। वृन्दावन में ही वृन्दावन की रोशनी देख सकते हैं। हमें सीधे समस्या को देखना चाहिए। उससे प्रत्यक्ष संपर्क साधना चाहिए। लेकिन अक्सर हम तुलना करने लग जाते हैं। तुलना मनुष्य को वस्तु से विमुख कर देती है। समस्या के पास अन्य विचार लेकर जाते हैं तो मूल समस्या को देख नहीं सकते अपने विचार को ही देखेंगे।

बुद्धि और चित्त किसी विभूति से प्रभावित नहीं होना चाहिए। जो अध्ययन करना चाहता है उसका चित्त नम्र होना चाहिए। चित्त में अगर पक्ष है तो उसमें विनय नहीं होती। वह मुक्त विचार नहीं है।

हमारे देश में एक दर्शन नाम की वस्तु है। हमारे सामने जो चीज है उसको हम देखते नहीं हैं। बल्कि दूसरी चीजों को ध्यान में रखते हैं। आँखों के सामने की चीज नहीं देखते। हम बड़ों का दर्शन करते हैं, तीर्थधाम का दर्शन करते हैं। यह सब भावनात्मक दर्शन है। जो केवल भावना से दर्शन है उसका दर्शन वैज्ञानिक नहीं होता वस्तुनिष्ठ नहीं होता।

वस्तु-निष्ठ सत्य

वस्तुनिष्ठा का अर्थ है चित्त में किसी तरह की ग्रन्थि नहीं रहनी चाहिए, चित्त पर मन का रंग नहीं चढ़ना चाहिए। सत्यान्वेषी का चित्त शुद्ध होना चाहिए अर्थात् विनययुक्त होना चाहिए, तटस्थ होना चाहिए। उसमें कोई पक्ष नहीं होना चाहिए। सत्य रहेगा तो पक्ष नहीं रहेगा और पक्ष रहेगा तो सत्य नहीं रहेगा। इसीलिए गांधीजी ने कहा था "ईश्वर ही सत्य है।" लेकिन बाद में कहा 'सत्य ही ईश्वर है।' ईश्वर की कल्पना में जितना अन्तर होता है उतना सत्य की कल्पना में नहीं। ईश्वर की कल्पना उपासना-निष्ठ है, सत्य की कल्पना वस्तुनिष्ठ है। ईश्वर की मूर्ति उपासना की है उपासना के लिए उसे माना जाता है। लेकिन सत्य को मानने या न मानने का सवाल ही नहीं है।

सत्य सर्वमान्य

एक निरीश्वरवादी कह सकता है कि 'मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ' लेकिन वह सत्य को मानता है। सत्य सर्वमान्य है। उसके दर्शन में अन्तर हो सकता है लेकिन उसकी मान्यता में अन्तर नहीं हो सकता। भौतिक पदार्थों में जितनी वस्तुनिष्ठा होती है, उतनी सत्य में भी है। सत्यनिष्ठ-दर्शन वस्तुनिष्ठ दर्शन है। इसे अध्यात्म कहते हैं। सत्य का दर्शन भावनात्मक नहीं है, वस्तुनिष्ठ है। पुष्प का रंग देखने के लिए हमारी आँखों पर उसी रंग का चश्मा नहीं होना चाहिए, ताकि उस फूल का रंग न देख सकें। रंगीन चश्मा लगायें तो उसका रंग भी बदलता हुआ दीखेगा। इस ढंग से नहीं होना चाहिए। हमारी आँखों में अपने चित्त में कोई रंग नहीं होना चाहिए।

गांधी के दर्शन में कोई रंग नहीं है। उन्होंने सत्य के दर्शन को अपना माना है। उन्होंने कभी नहीं माना कि उनका दर्शन और सत्य का दर्शन अलग है।

वस्तुनिष्ठ वह है जिसमें चित्त विकार-मुक्त हो, ग्रन्थि-रहित हो। विचार के लिए प्रमाण शुद्ध बुद्धि है। सम्यक विचार करने का साधन है बुद्धि।

दृष्टि सम्यक् हो

गांधी ने अगर कोई संस्कार दिया है तो वह इतना ही कि आँख साफ रहे। वस्तु जैसी है वैसी ही दिखाई देनी चाहिए। गांधी और विनोबा एक चीज को जिस रूप में देखते हैं, वह उसी रूप में हमें भी दिखाई देती है तो वह सत्य नहीं है। सभी चीजें जैसी हैं वैसी ही दिखाई देनी चाहिए—इसको मूलभूत दृष्टि कहते हैं। हमारी अपनी कोई ग्रन्थि न हो। हम समझने के लिए तैयार हैं, यह है आग्रही बुद्धि। बुद्धि में अच्छे और बुरे दोनों तरह के दोष न होने चाहिए। बुद्धि में इन दोनों बाधाओं से रहित स्थिति बन जाती है तब वह जिज्ञासु बुद्धि कहलाती है। हमारी बुद्धि में वस्तु-दर्शन की शक्ति होनी चाहिए, अगर वह नहीं होती है तो सर्वोदय भी एक सम्प्रदाय बन जाता है। इस दृष्टि से हमें सोचना चाहिए और विनय-युक्त तटस्थ और सम्यक् दृष्टि से देखना चाहिए।

मृत्यु तथ्य है

हमारे सामने अगर कोई समस्या नहीं है तो फिर विचार करने की जरूरत नहीं है। आज हमारे सामने एक विरोध (Contradiction) है। मनुष्य मरता है लेकिन वह मरना नहीं चाहता। जितनी समस्याएँ हमारे सामने हैं उन सबका मूल क्या है ? ये सारी सामाजिक प्रवृत्तियाँ क्या ? मनुष्य चाहता है जीवन। मृत्यु तथ्य (Fact) है और जीवन तत्त्व (Principle) है। यहाँ से एक संघर्ष (Conflict) शुरू होता है। ये सारी संस्थाएँ किसलिए ? मृत्यु के बीच जीवन का जो प्रयास है, वही इन सबका उत्तर है।

मृत्यु है। लेकिन मनुष्य को वह पसन्द नहीं है। वह भी सही है और वह भी सही है। दोनों वास्तविक हैं।

बाइबिल में आरम्भ से कहा गया है Dust thou art to dust thou returnest —तू मिट्टी है और फिर मिट्टी बनेगा। इसको एक शाप माना गया है। क्यों? यह तो एक तथ्य (Fact) है। इसको शाप मानने की आवश्यकता क्या है? जिस वस्तु से वह बना था उसमें ही वह मिल जायेगा। इसको शाप इसलिए माना गया कि आदम चेतन था वह जड़ में मिल जायेगा। मानो चेतन जड़ म मिल जायेगा। कवि ने कहा कि यह आत्मा के लिए नहीं कहा गया है। जड़ जड़ में मिल जाता है, तो वह शाप नहीं है। नदी सागर में मिलती है वह शाप नहीं है। ईश्वर से जन्मा है और ईश्वर में लीन होता है, तो शाप नहीं है। चेतन जड़ म मिलता है तो वह पाप है।

कालिदास का एक महाकाव्य है, 'रघुवंश'। जब इन्दुमती मर जाती है तब अज विलाप करता है। कालिदास समझाता है "मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्।" शरीरी के लिए मरण स्वाभाविक है। राम ने भी दशरथ की मृत्यु पर विलाप किया। यह सब क्यों होता है? यह महत्त्व का प्रश्न है। नैतिकता का प्रासभूत प्रश्न है। आखिर मृत्यु जीवन की वास्तविकता है, तो उसके लिए अरुचि और शोक क्यों होना चाहिए? मृत्यु का भय स्वाभाविक है। मीरता बिलकुल अलग चीज है। जैसे वीरता एक संस्कार है, वैसे ही भीरुता भी है। मृत्यु से हम बचना चाहते हैं, यह एक संस्कार है। हम मृत्यु के लिए रुचि पैदा करना चाहते हैं—शिक्षण से और संस्कार से। अब हमारे सामने प्रश्न आता है कि—क्या भगवान् ने हमें मृत्यु-दण्ड दिया है? यह पृथ्वी क्या मृत्युलोक है?— मृत्यु-लोक में भी हमने श्मशान को अलग रखा है। असल में सोचें तो पूरी पृथ्वी ही एक श्मशान है। इस पृथ्वी पर भी हमने श्मशान अलग बनाया है और उससे हम अलग रहना भी चाहते हैं।

एक बड़े समाजवादी से प्रश्न पूछा गया कि जेलखाने की जरूरत क्या है ? इस पर उन्होंने कहा कि 'तुम क्या समझते हो ?' हमारा जवाब था 'अधिक से अधिक लोगों को जेलखाने से बाहर रखने के लिए। उनको सुख-चैन से रखने के लिए कुछ को अन्दर रखना पड़ता है। वैसे ही श्मशानभूमि भी इसलिए है कि उसमें कम-से-कम लोग रहें। जब बकासुर के पास जाने की बारी आयी तो पाण्डवों में हरएक ने कहा कि 'मैं जाऊँगा। यह सभ्यता का लक्षण है।

पहले 'मैं' की भूमिका

एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा कि परिवार-नियोजन के बारे में मेरा रुख (Attitude) क्या है। वे दोस्त हैं। मैंने कहा कि मेरा एक 'एटिट्यूड' है लेकिन राय (Opinion) नहीं है। मेरा रुख जरूर है राय नहीं है। मैंने अपना रुख साफ किया। मेरा वह मित्र डॉक्टर भी है। वह एक दिन पेड़ा बाँटने के लिए आया। उनको एक नया बच्चा पैदा हुआ था। मैंने कहा कि तुम प्रामाणिक नहीं हो! क्योंकि अपना बच्चा पैदा होने की खुशी में पेड़ा बाँट रहे हो और वहाँ परिवार-नियोजन का क्लिनिक चलाते हो। बर्ट्रण्ड रसेल ने अपनी एक किताब 'न्यू होप्स फॉर ए चेंजिंग वर्ल्ड' में लिखा है कि 'अब डर यह है कि काले लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है और गोरे लोगों की संख्या कम होती जा रही है। विज्ञान में भी यह पक्षपात पाया जाता है।

गांधी ने सत्याग्रह की मर्यादा बतलायी। जहाँ संदेह होगा वहाँ अपने विरोध में मैं पक्षपात करूँगा तब मेरा संतुलन रहेगा। विनययुक्त बुद्धि संतुलित रहती है। सत्यनिष्ठ अपने विरोध में विचार करने लगता है। वस्तुनिष्ठ विचार में प्रामाणिकता की आवश्यकता है। उसका दृष्टिकोण यह होगा कि अगर आजादी का निर्माण करना है तो पहले अपने से

निर्भय होकर करो। अगर मरने की आवश्यकता है तो 'पहले मैं मरूँ' ऐसा हो।

एक विचारक ने कहा कि अगर मानवता को बचाना है, तो निकृष्ट लोगों की संख्या मत बढ़ाइये। जो अपने को अंत में रखता है, वह उत्कृष्ट कहलाता है। पानी पर भी उत्कृष्ट है। लेकिन जो कहता है कि अपनी संख्या बढ़ानी है और दूसरे की संख्या कम करनी है वह सभ्य नहीं कहलाता। उत्कृष्टता का लक्षण है 'मैं मरा रहूँ या तुम रहो।' प्रामाणिकता का लक्षण है विवेक। प्रामाणिकता हमेशा अपने में विमुक्त रहती है। *यह है गांधी का आचरण। उनका मत था कि 'सत्य अहिंसा में दोष नहीं* है दोष मुझमें है, इसलिए मेरा काम बना नहीं।'

सिद्धान्त की कसौटी व्यवहार से होती है। इसीलिए हमने गांधीजी को व्यवहारी कहा है। क्योंकि उन्होंने अपने जीवन को ही एक प्रयोग की प्रयोगशाला बना दिया था। उनका जीवन सत्य के प्रयोग—कहलाता है। इसलिए उनके आचरण का नाम 'कर्म-योग' रखा गया। जिसके कर्म में एक संतुलन है, एक योग है, एक समत्व है उसको कर्मयोगी कहते हैं। जिसे हम व्यावहारिकता कहते हैं उसका मतलब गांधीजी ने अपने जीवन में दिखाया है। जो आचरणीय नहीं है वह सिद्धान्त नहीं बन सकता। गांधी ने अपने जीवन में क्रान्ति के सिद्धान्तों को परिणाम बना दिया।

राजनीति और नैतिकता

श्री जयप्रकाश नारायण ने एक नया निबन्ध लिखा और वह जनता के सामने रखकर कहा कि वैधानिक लोकतन्त्र विफल हो गया है। तो उन्होंने जवाब दिया कि नहीं। डेमोक्रेसी विफल नहीं हुई हम विफल हुए हैं। इस प्रकार व्यवहारवाद एक अलग विचार है। सिद्धान्त का परीक्षण व्यवहार में होता है। गांधी विनोबा मार्क्स और लेनिन कहेंगे कि हमारे

साक्षात्कार हो गया है, तो कौन 'ना' करता ? लेकिन गांधी अन्त तक यही कहता रहा कि उसे अभी साक्षात्कार नहीं हुआ है। व साधारण मनुष्य के जीवन में सत्य का प्रवेश कराना चाहते थे। सत्य को सामाजिक मूल्य बनाना चाहते थे। इसीसे उनका व्यवहार प्रयोगात्मक हुआ। यह विज्ञान-युग की विशेषता है। विज्ञान ने अपने सारे चमत्कार सबसुलभ कर दिये। गांधीजी भी अपने प्रयोगों को सामाजिक बनाना चाहते थे। साधारण मनुष्य की वे उन्नति चाहते थे। साधारण मनुष्य का गुण है सत्यमय जीवन व्यवहार, इसे उन्होंने अपने व्यवहार में और जीवन में दिखाया।

सत्यान्वेषी की बुद्धि और मनोधर्म क्या है? गांधी ने कहा सत्य निष्ठ जीवन विनयशील निष्पक्ष और तटस्थ है। इन गुणों से ही जीवन का विकास सम्भव है।

हमने मनुष्य की मूलभूत समस्या का विचार आरंभ किया है। विज्ञान हमें मूलभूत समस्याओं की तरफ ले जा रहा है। अणुविज्ञान अब केवल अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संबंधों तक सीमित समस्या नहीं है। अणु-विज्ञान ने केवल इतना ही नहीं किया कि मनुष्यों के पारस्परिक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में क्रांति की हो या केवल युद्ध विषयक संबंध और नीति में ही क्रांति की हो परंतु साधारण मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों में भी आमूलाग्र परिवर्तन कर दिया है। विज्ञान ने हमको जहाँ तक पहुँचा दिया है उससे पीछे हटना संभव नहीं है आवश्यक भी नहीं है। वांछनीय भी नहीं है। परंतु उसने हमारे जीवन में जो परिवर्तन कर दिया है जो क्रांति कर दी है उसके कारण जीवन की मूलभूत समस्या का विचार करना अनिवार्य हो गया है। अब हम यह नहीं कह सकते कि हम अध्यात्म का विचार नहीं करेंगे। अध्यात्म से मतलब है मनुष्य की आत्मा का विचार, उसकी विभूति का विचार और उसके व्यक्तित्व का विचार। विज्ञान ने हमको भले ही वेदान्त तक न पहुँचाया हो लेकिन हमें जिस मुकाम और जिस मंजिल तक उसने पहुँचा दिया है, वहाँ अब वेदान्त का या मनुष्य के जीवन का विचार अनिवार्य हो गया है।

मानवीय दृष्टि

पहले हमें समझ लेना चाहिए कि मूलभूत समस्या क्या है। इसको अगर नहीं समझेंगे तो बाकी सारी समस्याओं के विषय में हमें कोई दृष्टि नहीं आयेगी। इसको हमने मानवीय दृष्टि कहा है। जीवन की दृष्टि का ही नाम मानवीय दृष्टि है। एक पुरानी मानवता—Humanism—थी एक नयी मानवता क्रांतिकारी मानवता—Radical Humanism—आयी।

के नये मानवतावादी मानवेंद्रनाथ राय के लोग थे। लेकिन मैं उस 'मानव्य-वाद' के बारे में नहीं कह रहा हूँ। मानव्यवाद अपने में अलग वस्तु है और मानवीय सिद्धान्तों का और मानवीय जीवन का विचार बिलकुल अलग चीज है। मैं इसका कोई वाद बनाकर एक विचारसरणी या विचार प्रणाली में इसको ठोस करना नहीं चाहता हूँ। एक विचार किसी प्रणाली में या वाद में स्थिर और बंद हो जायेगा तो मानवता का नाश हो जायेगा।

सौहार्द क्यों नहीं ?

अब हमारे सामने यह समस्या है कि मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार में जितनी निकटता है, उतना सौहार्द क्यों नहीं है ? मनुष्यों की निकटता बढ़ रही है मनुष्य एक-दूसरे के निकट आ रहा है। दुनिया छोटी हो रही है। एक जगह से दूसरी जगह जाना आसान हो गया है। समाचार एक जगह से दूसरी जगह अब किस गति से जाते हैं! हम प्रवास करते हैं शब्द की गति से। और हमारे वाहन शब्द और प्रकाश की गति से भी अधिक वेगवान् बन गये हैं। हनुमानजी का वर्णन किया गया है एक स्तोत्र में 'मनोजवं मारुततुल्यवेगम्।' उनकी गति मन के समान है, वह वायु के समान है। लेकिन अब वायु से तो अधिक वेग कई वायुयानों का हो गया है। अब हमारा प्रवास और हमारे समाचारों का आवागमन लगभग मन की गति से होने लगा है। अब मनुष्यों में इतना सान्निध्य यानी सन्निकर्ष एक दूसरे के साथ इतनी निकटता बढ़ रही है, तो फिर सौहार्द क्यों नहीं बढ़ रहा है ? यह प्रश्न है। अगर कोई कहे कि हमारे घर में चिराग भी बढ़ रहा है और अँधेरा भी बढ़ रहा है, तो क्या कहा जायगा ? कहता है कि कल तक मेरे मकान में एक-एक कमरे में एक-एक बल्ब रखा गया था अब एक बल्ब के साथ एक ट्यूबलाइट भी आ गया है। इसका परिणाम क्या हुआ ? अँधेरा बढ़ रहा है। मनुष्यों में निकटता बढ़ती है और अब

दूरी भी बढ़ रही है। मनुष्यों में संपर्क बढ़ता है और अविश्वास भी बढ़ रहा है। यह क्यों ? इसके कारण की खोज है।

अब तक विज्ञान इसका उत्तर नहीं दे सका। इसका उत्तर देना विज्ञान के लिए संभव नहीं हुआ है। हमने मान लिया है कि विज्ञान उत्तर दे सकेगा लेकिन वह नहीं दे सका है तो इसका उत्तर कौन देगा? इसका उत्तर मनुष्य देगा। इतने अंश में और इस रूप में विज्ञान से मनुष्य बड़ा है। विज्ञान यदि मनुष्य से बड़ा हो जायगा तो विज्ञान मनुष्य को चलायेगा मनुष्य विज्ञान को नहीं चलायेगा। विज्ञान का नियंत्रण मनुष्य करेगा या मनुष्य का नियंत्रण विज्ञान करेगा ? इस समस्या का उत्तर आज हम और आप जैसे साधारण मनुष्य को देना है। कोई विशेष मनुष्य इसका उत्तर नहीं दे सकेगा। साधारण मनुष्य को ही इसका उत्तर देना है, जो दूसरे मनुष्यों के साथ रहना चाहता है। विज्ञान ने हमें यहाँ तक पहुँचा दिया है कि या तो यह दुनिया एक होकर रहेगी या बिलकुल नहीं रहेगी। वेंडल विल्की ने जब पहले पहल किताब लिखी तो लोगों का ध्यान उसकी तरफ आकर्षित हुआ। वह पुस्तक है One World—एक विश्व। उसका अंतिम वाक्य क्या है ? अब या तो दुनिया One World—एक विश्व होगी या No World—नहीं ही—होगी। विज्ञान ने हमारे सामने यह सवाल उपस्थित कर दिया है। इनमें से हम क्या चुनें यह आज की समस्या है। मनुष्यों में सान्निध्य बढ़ता चला जाय और सौहार्द न बढ़े इसके बदले मन और अविश्वास बढ़ता जाय—इस समस्या का उत्तर विज्ञान हमको नहीं दे सकेगा।

स्नेह की आकांक्षा

इस विरोध (Contradiction) का उल्लेख पहले भी कर चुका हूँ। अब उसका विश्लेषण कर रहा हूँ। यह विरोध मनुष्य में कहाँ से आया ? क्यों आया ? सौहार्द क्यों न रहे ? अगर विज्ञान के बढ़ने से

रोशनी कम हो रही है तो इसका मतलब है ये चिराग या बल्ब ही ऐसे हैं जो रोशनी को नहीं बढ़ाते बल्कि अँधेरा ही बढ़ाते हैं। यह दोष उस चिराग का है। इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य ने अब तक मनुष्य के पूरे-पूरे स्नेह को नहीं समझा। क्या मनुष्य में स्नेह की आकांक्षा नहीं है? मैंने कहा कि मनुष्य में स्नेह की आकांक्षा है। यह स्वाभाविक है। इसे कमाना या उपार्जन नहीं करना है। एक्वायर नहीं करना है। एक बहुत दुष्ट आदमी है। वह किसीको अच्छा नहीं कहता कोई भी उसको अच्छा नहीं कहता। सारा मोहल्ला उसके विरोध में है। मोहल्ले के जो भले लोग हैं भली स्त्रियाँ हैं वे सब भगवान् से प्रार्थना करते हैं पूजा करते हैं कि यह दुष्ट आदमी यदि मर जाय तो हम सत्यनारायण की कथा करेंगे। इस तरह का एक आदमी है। लेकिन एक दिन वह आपके यहाँ आता है और आपसे कहता है कि मोहल्ले भर में आप एक ही हैं आदमी। मैंने आपके जैसा कोई आदमी नहीं देखा। यों तारीफ़ करके चला जाता है। तो आपके मन में कौन-सी भावना पैदा होती है? यह अपना हृदय टटोलने की बात है। आप अपनी पत्नी से कहते हैं माँ से कहते हैं कि वह बड़ा दुष्ट आदमी है। लेकिन फिर भी वह मुझे अच्छा कहता है। यानी सद्भाव बुरे-से-बुरे आदमी का भी हमको बड़ा अच्छा लगता है। यह खुशामद नहीं है, चापलूसी नहीं है। खुशामद और चापलूसी बिलकुल अलग चीज़ें हैं। आपकी खुशामद करने की उसे ज़रूरत ही क्या है? उसके मन में आया कि पड़ोस में एक सज्जन रहते हैं। वे दूसरे पड़ोसियों से अच्छे हैं। फिर वह आपसे वैसा कह देता है। बुरे-से-बुरे और अदना-से-अदना मनुष्य का स्नेह हमारे लिए उपादेय है। दुष्ट-से-दुष्ट मनुष्य का सद्भाव और स्तुति जिस प्रकार हमें प्रिय लगती है उसी प्रकार दुष्ट-से-दुष्ट और निकृष्ट-से-निकृष्ट मनुष्य का स्नेह और सौहार्द हमारे लिए उपादेय है, संग्राह्य है। इसको हमें प्राप्त करना चाहिए और उसका संरक्षण करना चाहिए।

शिक्षण

यह सिखाया नहीं सिखा सकता। इसे सिखाने के लिए शिक्षण की आवश्यकता है। यह काम शिक्षक का ही है। शिक्षण का काम क्या है? मनुष्य के भीतर भरी हुई इस भावना को जगाना। नयी भावना वह पैदा नहीं कर सकता। वस्तु-निर्मिति की शक्ति मनुष्य में नहीं है। शायद ईश्वर में भी नहीं है। जो गुण है उसे जाग्रत किया जा सकता है। जो अन्दर छिपी हुई चीज है उसे प्रकट किया जा सकता है। उसे प्रकट करने का नाम ही शिक्षण है। अंग्रेजी में जिसे एज्युकेशन कहते हैं उसका मतलब ही है बाहर निकालना (Bringing out)। इसको प्रकट करने के लिए दो बातें करनी पड़ती हैं। एक तो शिक्षक उसके अनुकूल होना चाहिए। और सामाजिक परिस्थिति भी उसके अनुकूल होनी चाहिए। ये दोनों ऐसे हों कि मनुष्य को इन भावनाओं को जाग्रत करने के लिए केवल अवसर ही नहीं दें बल्कि प्रेरणा भी दें। केवल अवसर ही नहीं प्रोत्साहन प्रेरणा और स्फूर्ति दें।

मनुष्य के भीतर एक चीज है कि दुष्ट से दुष्ट मनुष्य भी यदि तारीफ करता है तो भीतर की आँख खुलती है। पशु भी तारीफ करता है, तो प्रसन्नता होती है। इस प्रकार मनुष्य का मनुष्य के लिए जो स्नेह है, वह निकृष्ट से निकृष्ट मनुष्य में भी हो सकता है। यह सिद्धांत सर्वोदय का आधारभूत या मूल सिद्धान्त है। दुनिया में ऐसा दुष्ट और ऐसा अधम कोई नहीं है जिसका उद्धार सम्भव नहीं है। कोई कहते हैं कि हमें निन्दा-स्तुति का परवाह नहीं है। निन्दा-स्तुति का चिन्ता न होना अपने में एक गुण जरूर है। इसमें कुछ विनय भाव भी है। एक मनुष्य ने आपकी निन्दा की तब भी आपने अपना रास्ता नहीं छोड़ा और एक ने आपकी स्तुति की तब भी आपने अपना मार्ग नहीं छोड़ा—इस अर्थ में निन्दा-स्तुति की तरफ तटस्थ रहना गुण है। लेकिन इसमें अधिक गुण

उसमें नहीं है। एक आदमी आपकी निंदा करता है तो आपको समझने की कोशिश करनी चाहिए कि वह मेरी निंदा क्यों करता है। इसमें उसकी मनुष्यता की प्रतिष्ठा है। जब आप यह कहते हैं कि वह मेरी निंदा करता है, मैं उसकी कोई परवाह नहीं करता तो क्या आपका मतलब यह है कि आप मनुष्यता की कद्र नहीं करते ? एक मनुष्य आपके विषय में एक मत व्यक्त करता है और उसकी तरफ आपकी उपेक्षा होती है तो आप मनुष्यता की उपेक्षा करते हैं। आपको यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि आखिर मेरे बारे में उसकी राय ऐसी क्यों बनी ? इसे विनम्रता कहते हैं। विनम्रता या विनय-शीलता का अर्थ है, तटस्थता। विनयशीलता तटस्थता में से आती है। एक मनुष्य आपकी स्तुति करता है, तो क्या उस मनुष्य की स्तुति का कोई मूल्य नहीं है ? आप कहते हैं— 'हाँ उसने हमारी स्तुति की लेकिन उस स्तुति की हमारे सामने कोई कीमत नहीं है। वह कहेगा कि मैं क्या ऐसा आदमी हूँ ? मेरी कोई कीमत नहीं है ? क्या मैं तुच्छ वस्तु हूँ ? मनुष्यता की प्रतिष्ठा का यह अर्थ है कि वह आपके विषय में अच्छी राय बनाता है तो उसका भी मूल्य है और बुरी राय बनाता है तो उसका भी मूल्य है। उसकी अच्छी या बुरी राय से आप अपना सम्मान तो नहीं मापेंगे लेकिन उसकी राय को अच्छी तरह समझने की कोशिश करेंगे। यह आवश्यक है।

लोक-मत और निन्दा-स्तुति

सार्वजनिक जीवन में हमें सिखाया जाता है कि जनता की राय की कद्र करो लेकिन निंदा-स्तुति की तरफ उपेक्षा रखो। कितना बड़ा विरोध (Contradiction) है यह! लोकमत का आदर करो लेकिन निंदा-स्तुति की उपेक्षा करो। तटस्थ रहो। लोक अलग है और निंदा स्तुति करने वाले अलग हैं ? जो निंदा-स्तुति करते हैं वे 'लोक' नहीं हैं और जो 'लोक' नाम की वस्तु है वह व्यक्त नहीं अव्यक्त है। नतीजा

क्या होता है ? 'लोक' नाम की अव्यक्त वस्तु में मनुष्य खो जाता है। 'लोक' नाम की एक वस्तु बना ली और उसकी पूजा की लेकिन व्यक्ति की उपेक्षा की व्यक्ति की तरफ से तटस्थ हो गये।

पारस्परिक 'आत्म-हत्या

जूलिया वार्ड होव नाम की एक लेखिका थी। वह एक दफा एक राजनैतिक पुरुष के पास एक व्यक्ति को ले गयी और उससे कहा कि 'मैं इसको आपके पास लायी हूँ। यह संकट में है। इसको आपकी सहायता की जरूरत है। इसके मामले में आप जरा ध्यान दें।' तब उसने कहा 'जूलिया मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं व्यक्तियों की तरफ ध्यान दे सकूँ।' जूलिया ने कहा कि— 'यह ध्यान देने लायक बात है। इस मंजिल तक भगवान् भी नहीं पहुँचा है कि व्यक्तियों की तरफ ध्यान न दे सके।' यह मनुष्य के व्यक्तित्व का प्रश्न है, उसकी विभूति का सवाल है। इसीलिए मैंने कहा कि मानववाद पुराना मानववाद नया मानववाद या क्रांतिकारी मानववाद—आदि वादों में न पड़ें। कोई अगर कहता है कि 'आप जो बात कह रहे हैं वह हमारी ही बात है' तो मुझे खुशी है। लेकिन कोई कहे कि 'हम आप से पहले कह चुके हैं' तो और भी खुशी की बात है। तो हम आपके नाम पर लोगों को यह बतला दें। क्योंकि हमें इस बात की चिन्ता नहीं है कि हम कोई नयी बात कहें। चिन्ता इस बात की है कि सही बात कहें। जो सोचें वह सही सोचें इसकी चिन्ता है। हमारी कोई अलग बात हो तो हरएक की अपनी-अपनी अलग बात हो जायगी। हरएक की अपनी-अपनी अलग बात होती है, तो क्या होगा जो आज हो रहा है वही होगा। आज हरएक की अपनी-अपनी अलग बात है और सब एक-दूसरे के खिलाफ खड़े हैं। नतीजा आया 'Mutual Suicide' (परस्पर आत्म-हत्या)। म्युचुअल सुसाइड [illegible] बड़ा रोचक है लेकिन बड़ा विरोधपूर्ण भी है। आत्म-हत्या भी है और

परस्पर भी है। पारस्परिक आत्म-हत्या आज के युग का वचन है। जिस युग को आज लोग अपनी कल्पना में देखते हैं उसका नाम उन्होंने 'पारस्परिक आत्म-हत्या' रखा है। अब आत्म-हत्या भी अकेले में नहीं करेंगे। एक-दूसरे की सम्मति से करेंगे सहयोग से करेंगे। सवाल यह है कि आत्म-हत्या यदि सम्मति से और सहयोग से हो सकती है तो पारस्परिक जीवन सहयोग और सम्मति से क्यों नहीं हो सकता ?

यह समझ में नहीं आता कि इसमें रुकावट कहाँ है। आज राजनीति का अर्थ है कि एक राजनीतिज्ञ दूसरे राजनीतिज्ञ से मिलता है, तो ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो दोनों जानते तो हैं लेकिन समझता एक भी नहीं। यह डिप्लोमेटिक लैंग्वेज कहलाती है। राजनैतिक भाषा का अर्थ ही यह है कि ऐसी भाषा बोलो जो सब जानते हों लेकिन किसीकी समझ में न आती हो। आपही की भाषा में बोल गये लेकिन क्या बोल गये यह समझ में नहीं आया। इसे डिप्लोमेसी कहते हैं। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के हृदय के निकट नहीं जा पाता। दो मंत्रियों की भाषा मंत्रियों की भाषा होती है, मनुष्यों की भाषा नहीं। दरबार की भाषा सभा की भाषा धर्म की भाषा संस्था की भाषा आदि कई भाषाएँ हैं। हमारे कहने का मतलब है कि सामान्य मनुष्यों की (Common man) की भाषा होनी चाहिए, ताकि उसका मतलब हम समझ लें। भाषा मानवीय होनी चाहिए। मानवीय का मतलब है मनुष्यों के हृदयों को एक-दूसरे के निकट लानेवाली भाषा। वह सभ्य भाषा है, सही भाषा है, सांस्कृतिक भाषा है। उसका बाहरी रूप कोई भी होगा।

अंतराय त्याज्य है

मराठी में तुकाराम का एक वाक्य है "कासावीस बाढे कर्मे अंतराय। तो मन पाप आज त्यजावी है।" अंतराय यानी रुकावट। जिसके कारण

भगवान के और आपके बीच अंतराय आ जाता है रुकावट आती है, वह वस्तु चाहे भी हो माता-पिता ही क्यों न हो उसका त्याग करना चाहिए। आज इस लोकनीति में अगर तुकाराम महाराज होते तो वे क्या कहते ? मनुष्य और मनुष्य के बीच जो अंतराय की वस्तु होती है वह चाहे कितनी भी बडी हो त्याज्य है। वह हमारे लिए कितनी भी पूज्य हो त्याज्य है। यह गांधी ने पहचान लिया था। उन्होंने कहा कि 'मेरा धर्म सार्वभौम है; भौगोलिक सीमाओं का बंधन मेरे धर्म में नहीं है। वह सार्वत्रिक है। वाक्य सुनने में बड़ा मधुर है लेकिन इसका अर्थ क्या है ?

हम कहते हैं कि पश्चिम की प्रकृति संस्कृति भिन्न है तथा पूर्व की प्रकृति संस्कृति भिन्न है। एक तरफ तो यह कहते हैं और दूसरी तरफ कहते हैं कि अमरीका में जैसी संपन्नता है, वैसी हमारे यहाँ भी होनी चाहिए। राजाजी से लेकर संकरन नंबूदीपाद तक यहाँ के किसी भी राजनीतिज्ञ से पूछिए। वे कहेंगे—हमारे देश में एक अध्यात्म रहा है। नंबूदीपाद एक दूसरी भाषा में कहेंगे। अध्यात्म के बदले वे कहेंगे यहाँ की एक प्रकृति या परम्परा रही है। कम्युनिस्टों की संस्कृति की परिभाषा है—Patern of Behaviour यहाँ कम्युनिज्म आता है तो उनकी अपनी पद्धति के अनुरूप ही आयेगा। पहले तो ये लोग इतना नहीं मानते थे। अब कहते हैं कि 'कामरेड' की जगह 'साथी' कहें तो हर्ज नहीं है। अब साथी की जगह 'भाई' कहें तो भी हर्ज नहीं। 'नमस्कार' कहें तो भी हर्ज नहीं क्योंकि यहाँ की परम्परा ऐसी है। कुल मिलाकर आधुनिक और प्राचीन में जब मैं जब पूर्व और पश्चिम का प्रयोग होता है, तब उसमें कोई आपत्ति नहीं लेकिन अगर कोई कहता है कि पूर्व की संस्कृति अलग चीज है और पश्चिम की संस्कृति अलग है, तो हमको विचार करना चाहिए। एक तरफ हमारे देश में आध्यात्मिक परम्परा रही है और भौतिक सुख के प्रति अनास्था और उपेक्षा रही है। फिर कहते

है कि टेनस्सी वैली जैसा भाखड़ा-नांगल भी हमारे यहाँ हो गया है। दूसरे देशों में गाँव-गाँव में और घर-घर में बिजली पहुँच गयी है। हमारे यहाँ अभी नहीं पहुँची है, लेकिन जल्दी पहुँच जायगी। हवाई जहाज अभी तक सब सुलभ नहीं हुआ है लेकिन थोड़े दिनों के बाद हो जायगा। मतलब क्या है? यह विज्ञान न पश्चिम का है, न पूरब का। विज्ञान सार्वजनिक है। दुनिया भर के वैज्ञानिक अपने-अपने आविष्कारों का अगर एकीकरण न करते तो यह अणु-शक्ति की खोज आदि न हुई होती। आविष्कारों के इस एकीकरण की वजह से आज यह अनिवार्य हो गया है कि दुनिया जीयेगी तो एक होकर जीयेगी या बिलकुल नहीं जीयेगी।

विज्ञान सार्वभौमिक

विज्ञान का यह स्वभाव है कि वह सार्वभौमिक है और इस अणु शक्ति की वजह से यह आवश्यकता पैदा हुई कि यह आविष्कार सारे देशों के सहयोग के लिए हो। सारे देशों के वैज्ञानिकों के सहयोग से यह हुआ। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के बिना वैज्ञानिक आविष्कार अगर असंभव है तो इस विज्ञानयुग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के बिना वैज्ञानिक जीवन भी असंभव है। यह अनिवार्यता विज्ञान से पैदा हुई है। इसलिए अब हमारे मन में पूर्व और पश्चिम का भेद नहीं होना चाहिए। प्राचीनता और अर्वाचीनता कालवाचक भेद है। कालवाचक भेद अलग चीज है और देशवाचक भेद अलग चीज है। लेकिन प्राचीनता का अवरोध जहाँ रह गया है, उसको पूर्व नाम दे दिया और आधुनिकता या अर्वाचीनता का विकास जहाँ हुआ है, उसको पश्चिम नाम दे दिया। सुविधा के लिए यह नाम देते हैं तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन इसके कारण मनुष्यों की प्रकृति में अगर भेद आ जाता हो तो उसमें खतरा है। यह एक बड़ा अंतराय है। आज ऐसा एक भेद पैदा हुआ है कि गोरे मनुष्य की एक संस्कृति है एक प्रकृति है, काले और भूरे आदमियों की दूसरी संस्कृति है दूसरी प्रकृति है।

इस पर बहुत गहराई से सोचने की जरूरत है। नहीं तो यह 'जय जगत्' का हमारा नारा व्यर्थ होनेवाला है। यह केवल नक्शे में या झंडे पर लिखने की चीज नहीं है, हृदय पर लिखने की चीज है।

वर्ण-भेद का कारण

हमने जब राज्यशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया तो सबसे पहली पुस्तक पढ़ी बकल की History of Civilization (संस्कृति का इतिहास)। उसमें सबसे पहली चीज यह लिखी है कि 'आबोहवा का प्राकृतिक परिस्थिति का और वातावरण का मनुष्य की प्रकृति पर बहुत बड़ा परिणाम होता है। इसलिए भिन्न-भिन्न देशों के लोगों की भिन्न-भिन्न प्रकृति और संस्कृति होती है।' यह जलवायु और वातावरण का सिद्धान्त एक अंश में सही होते हुए भी पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह मानवद्रोही सिद्धान्त है। गांधी जब कहता है कि मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं को नहीं मानता तो इसे समझने की आवश्यकता है। गोरे लोगों की उच्चता गोरे लोग हमेशा मानते रहे हैं। आज का Apartheid (रंगभेद) भी यही है, भारत की छुआछूत भी यही है। उच्चता और निकृष्टता एक जगह देश-काल से आयी और दूसरी जगह जन्म से आयी। उसने बहुरूप धारण किया है। एक वर्ण-भेद या Colour Problem कहलाता है दूसरा जातिवाद है जिसका आरंभ जन्म से हुआ है। दोनों में एक समानता है कि वर्ण का सम्बन्ध भी रंग से है और जन्म का सम्बन्ध भी वंश से है। दोनों का सम्बन्ध विवाह से है। इसलिए काले और गोरे का अगर विवाह होता है तो सारे समाज में उसकी प्रतिक्रिया विरुद्ध हो जाती है। काले का मतलब उनसे है जो काले लोगों में निकृष्ट समझे जाते हैं। जो सबसे निकृष्ट है— जैसे भंगी उनके विषय में आज भी प्रतिकूलता है। हम भी अपनी लड़की के लिए गोरा ही लड़का चाहते हैं। लड़का भी गोरी लड़की को ही

मानता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कुल के विषय में कहा जाता है कि उनके यहाँ सौंवके रंग की लड़की था ही नहीं सकती थी। मनुष्य यह जो जन्म की परिस्थिति का निवरण करना चाहता है, उसम से वंश भेद की कल्पना आती है।

प्राकृतिक अन्तराय

सबसे पहले मैं प्राकृतिक अंतराय ले रहा हूँ जिसे आप नैसर्गिक अंतराय कहते हैं, जिसे रक्त और वंश का भेद कहते हैं। इसमें से रक्त की शुद्धि और वंश की कुलीनता की भावना पैदा हुई। जिसका रक्त शुद्ध है, वह कुलीन और जिसका शुद्ध नहीं है, वह अकुलीन। यह रक्त-शुद्धि की भावना मनुष्य को मनुष्य से दूर करती है। अशुद्ध रक्त किसका ?—जिसका रक्त हमारा रक्त नहीं है वह अशुद्ध। इसके अलावा तो कोई मतलब ही नहीं है। अंतिम का मतलब अशुद्ध है। यदि अस्पताल में खून देने की बात आती है तो रक्तदान के लिए सब तैयार हो जायेंगे। वहाँ यदि सीमा विवाद खड़ा होता है, तो कन्नड़ी और मराठी भाई एक-दूसरे का खून बहा देंगे। बीमार के लिए देते समय यह चिंता नहीं रहती कि कौन किसके लिए खून दे रहा है। कन्नड़ी आदमी का खून मराठी आदमी के शरीर में भी पहुँचाया जा सकता है। यह व्यक्तिनिरपेक्ष है। वहाँ मनुष्य का मनुष्य के साथ संबंध नहीं होता। वहाँ व्यक्ति का संबंध आया नहीं मराठी कन्नड़ी मदरासी आदि सारे भेद खड़े होंगे। सीमा-विवाद में भी लड़ाई है, क्योंकि यह भी व्यक्ति निरपेक्ष है।

वर्ण और जाति से अस्पृश्य भावना का विकास

अंतराय है व्यक्ति निरपेक्षता। मनुष्य सामुदायिक नामों में खो जाता है। मनुष्य का विकास नहीं होता। ये दोनों अलग अलग हैं। मनुष्य का समुदाय में लीन हो जाना एक बात है और समुदाय में मनुष्य

का खो जाना दूसरी बात है। गांधी समुदाय में लीन हो गया था, खो नहीं गया था। उसने अपने जीवन में दूसरों को शामिल कर लिया था। इसलिए वह दोनों काम करेगा। जहाँ आवश्यकता होगी वहाँ रक्तदान भी करेगा और जहाँ आवश्यकता होगी वहाँ दूसरे का नहीं अपना ही खून बहायेगा। रक्तदान होगा और रक्तपात भी होगा तो अपने रक्त का होगा दूसरा का नहीं।

मैंने कहा था कि गांधी का व्यवहार तत्त्व के परीक्षण के लिए था। सिद्धांत का परीक्षण व्यवहार से करो, दर्शन का परीक्षण बर्ताव से करो। लेकिन किसके बर्ताव से?—जो कहता है कि मेरी कुलीनता दूसरे मनुष्यों से मुझे अलग नहीं करती। एक तरफ श्रेष्ठ ब्राह्मण की कुलीनता और दूसरी तरफ हिटलर की नाजी कुलीनता। इसका परिणाम यह हुआ कि योरोप भर के ज्यू लोगों को जो इतने वर्ष दूसरे देशों में रहे अब अंत में जाकर यह सोचना पड़ा कि हम लोगों को रहने के लिए कोई एक दूसरा देश दिया जाय। एडविन मांटेग्यू ज्यू था। कार्ल मार्क्स के शरीर में ज्यू का रक्त था। आईंस्टीन भी ज्यू था। कार्ल मार्क्स जर्मनी में नहीं रह सकता था। वह यदि हिटलर के जमाने में रहा होता तो आईंस्टीन की जो स्थिति हुई वही उसकी भी होती। यह ज्यू लोगों का उत्पीड़न सारे योरोप में शुरू हुआ। इसका कारण है वंशभेद और जातिभेद। वंश और जाति अस्पृश्यभावना का विकास करती है।

स्पर्श प्रिय बनना है

मनुष्य को मनुष्य का स्पर्श प्रिय होना चाहिए। कपूर में अगर सुगंध है, फूल में अगर सुगंध है तो गांधी पूछता है, 'क्या मनुष्य में सुगंध नहीं है?' कालिदास ने शाकुन्तल में लिखा है कि जिस बच्चे का शरीर धूल और कीचड़ से सना हुआ हो उसे गोद में लेनेवाला और उससे जिसका अपना कपड़ा मैला हुआ हो, वह पिता धन्य है।

उस मैल से कपड़ा गन्दा नहीं होता पवित्र होता है। वह मनुष्य की सुगन्ध है। यह ध्यान में रखने की बात है कि भीड़ अलग है संपर्क अलग है। भीड़ में रहना कोई पसंद नहीं करता क्योंकि भीड़ में मनुष्य खो जाता है। भीड़ में सोहबत नहीं है कोई किसीका साथी नहीं है। जहां सोहबत नहीं है, वहां मनुष्य घबड़ाता है। जहां सोहबत है वहां मनुष्य की सुगन्ध होती है।

जितने ही धार्मिक और संयमी लोगों ने स्पर्श को दोष बतलाया है। वे स्पर्श को ही विषय मानते हैं। स्पर्शप्रियता अधम मानी गयी है। जहां एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के शरीर को उपभोग का विषय मानता हो वहां स्पर्श से पतन होता है। लेकिन जहां एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के शरीर को पवित्र मानता है, वहां स्पर्श से उद्धार होता है, उन्नति होती है। इसलिए हमसे कहा गया है कि जो पवित्र पुरुष है उसका चरण-स्पर्श करना है। 'स्पर्शमणि सुवर्णीकुरु मां मलिन लोह'। वह भगवान् से प्रार्थना करता है कि मैं मलिन लोहा हूं तुम्हारे स्पर्श से सोना बन जाऊंगा। हर मनुष्य को दूसरे मनुष्य के लिए स्पर्शमणि बनना है। इसे 'ह्यूमन डिग्निटी' 'सेक्रेडनेस ऑफ लाइफ' कहते हैं। हर मनुष्य का विग्रह, उसका शरीर उतना ही पवित्र है, जितना भगवान् का शरीर।

लोकतन्त्र का अध्यात्म

मैं यह समझा रहा हूं कि लोकतंत्र में अध्यात्म कहां आता है। यही है अध्यात्म। यदि यह अध्यात्म नहीं है तो आपको मनुष्यों का संपर्क टालना चाहिए। अब यह पत्थर देखकर हमें बहुत आनन्द होता है और कहते हैं कि इसमें बड़ी रम्यता है। और मनुष्य में? पहाड़ और पत्थर में रम्यता क्या है? उसमें भाता है, इसलिए? आप पर कोई जिम्मेदारी नहीं आती। मनुष्य का मनुष्य के साथ जो संबंध होता है सजीव वस्तु के साथ जो संपर्क होता है उसमें जिम्मेदारी

जाती है। दायित्व आता है। उस जिम्मेदारी और दायित्व का ही अर्थ है, मनुष्यता। पहाड़-पत्थर कोई दायित्व नहीं लेता। लेकिन वृक्ष हो तो चूँकि उसमें जीवन है इसलिए दायित्व आ जाता है। कहते हैं भगवान् शंकर ने देवदारु को ही अपना पुत्र बनाया। क्यों? इसलिए कि देवी पार्वती ने उसे अपना स्तन्य पान कराया है, अपने हाथों स्वर्णमय कुंभ से जल पिलाया है। 'स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः' यह ऐसा वृक्ष है, जिसने स्कन्दमाता का पय पान किया है। जार्ज वाशिंग्टन के घर में मरोय का एक पेड़ था। उसके पिता उस पेड़ की बड़ी सावधानी से सार-सम्हाल करते थे। किशोर जार्ज के हाथ एक कुल्हाड़ी लग गयी और वह बगीचे में खेल रहा था। उसने प्रयोग करते-करते उस पेड़ पर भी प्रयोग किया। वृक्ष गिर गया। जार्ज के पिता ने देखा तो वे रोने लगे। तब जार्ज ने सोचा— मैं तो इनका बेटा हूँ। मैं खेल रहा था एक पेड़ गिर गया तो इसीलिए बाप रो रहा है? बाप इसलिए रो रहा था कि उसके दिल में उस पेड़ के प्रति प्रेम था। मनुष्य का मनुष्य से जितना संबंध होता है, उतना ही दूसरे के जीवन के लिए दायित्व बढ़ता चला जाता है।

अपने जीवन में दूसरों को शामिल करना सद्गुण कहलाता है, चारित्र्य कहलाता है। अपने जीवन के लिए और अपने साथ रहने वालों के जीवन के लिए यह जो जिम्मेदारी की भावना है, जो दायित्व की भावना है, यह मानवता कहलाती है। यही सद्गुण है। Old Testament में उल्लेख आता है कि आदम के दो बेटे थे—अबल्स और केन। केन ने अबल्स को मार डाला। उससे पूछा गया कि तुमने उसको क्यों मारा तो उसने जवाब दिया कि क्या मैं अपने भाई का संरक्षक हूँ? इसका जवाब है कि 'हाँ' हरएक मनुष्य दूसरे का रक्षक है। एक-दूसरे का अभिभावक है। इस भावना का विकास गांधी ने और गांधी जैसे अन्य लोगों ने किया

राजनीति में मानवता का प्रवेश

गांधी को आप उपलक्षणात्मक मानिए। उपलक्षणात्मक इसलिए कि युद्ध और राजनीति के क्षेत्र में उसने इस भावना से काम किया। यहाँ इस भावना का प्रवेश नहीं था। प्रतीकार के क्षेत्र में मानवता की भावना का प्रवेश नहीं था। यही है राजनीति का अध्यात्मीकरण। इस मानवता की दिव्य भावना का प्रवेश जिस क्षेत्र में नहीं था उसे गांधी ने कराया। इसलिए गांधी उपलक्षणात्मक बन गया, प्रतीकात्मक बन गया। यह केवल एक व्यक्ति का नाम नहीं, एक विभूति का नाम है। विभूति का अर्थ है जीनियस। जीनियस एक गुण-समुच्चय का नाम है, जिसका प्रतीक गांधी था। उसने दूसरों के जीवन की जिम्मेदारी ली थी। यह जिम्मेदारी की भावना ही धर्म है, कैरेक्टर है, चारित्र्य है। इसे ही सदाचार नीति कहते हैं। यह मूल मानव-धर्म है। प्राणिमात्र की जिम्मेदारी ले सकता है तो बहुत अच्छा है। नहीं ले सकता तो कम-से-कम मनुष्यमात्र के लिए संकल्प हो। मनुष्यमात्र के लिए संकल्प हो सकता है, तो विज्ञान मनुष्य के लिए गौरव, आनन्द और जीवन के विकास का कारण बन सकता है। विज्ञान को गौरव, आनन्द और जीवन के विकास का साधन अगर बनाना हो तो मनुष्य में इस भावना का विकास करना होगा।

संख्या अवश्य जाननी चाहिए, लेकिन संख्या से अधिक महत्त्व गुण का है। गुण-रहित संख्या निष्प्राण कलेवर है। केवल आकार बड़ा होने से काम नहीं चलता। संख्या भी हो और गुण भी हो तो बहुत अच्छा। न पक्षस्य अधिकं पक्षम्। लेकिन संख्या न हो तो कम-से-कम गुण का संरक्षण करना चाहिए। गुण का मूल्य संख्या को नहीं देना चाहिए। संख्या को गुण का मूल्य देंगे तो दोनों जायेंगे। संख्या तो निष्प्राण है ही और गुण से भी हाथ धो बैठेंगे। 'ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च।' गुण में मुख्यता निरपेक्षता है। नित्य वस्तु तो मापक होती है। आकार अपने में मापक नहीं है, संख्या मापक नहीं है। गुण व्यापक

बनता है तो उसके साथ जो आकार आता है उसका महत्त्व है, केवल संख्या का महत्त्व नहीं है।

व्यक्तित्व की सुगंध

इसलिए गांधी सामुदायिक जीवन का सामाजिक जीवन का प्रतिपादन करता था। लेकिन उसके साथ-साथ यह भी कहता था कि पहले गुण का विकास व्यक्तिगत जीवन में होना चाहिए। गुण यानी मानवता का गुण। मानवता गुण है दायित्व की भावना है। अब 'म्युचुअल सूसाइड—पारस्परिक आत्महत्या—की जगह Mutual survival (पारस्परिक संजीवन) आया। दृष्टिकोण बदल गया। पूरा का पूरा सिद्धान्त बदल गया। अब इसको समाज के हर क्षेत्र में लागू करना चाहिए। सामाजिक क्षेत्र आर्थिक क्षेत्र राजनीतिक क्षेत्र और धर्म का कोई अलग क्षेत्र हो तो धर्म का क्षेत्र भी। गांधी ने जीवन के बहुत से क्षेत्र मानी कक्षाएँ मानी थीं लेकिन जीवन के विभाग नहीं मान थे। जीवन के बहुत से क्षेत्र होना अलग चीज है और जीवन के विभाग होना अलग। एक उदाहरण दूं कमल का। कमल की पंखुड़ियां हैं। अब मान लीजिये कमल की एक-एक पंखुड़ी निकाल देते हैं तो क्या बचेगा? फिर भी कमल है। क्योंकि हर पंखुड़ी में सुगन्ध है। दूसरा उदाहरण पत्तागोभी का लें। गोभी का एक-एक पत्ता निकालते जायें तो सारे पत्ते निकल जाने के बाद गोभी नाम की कोई चीज ही नहीं रही। मनुष्य का व्यक्तित्व कुछ ऐसा ही हो रहा है। उसमें से आप उसकी सारी शक्तियाँ Capacities निकाल देते हैं बाह्यचमत्कार हटा दिया कवित्व निकाल दिया भारतीयत्व निकाल दिया कांग्रेसीपन हटा दिया तो अन्त में कुछ भी नहीं बचा। क्योंकि मनुष्यत्व था ही नहीं। जो मूलभूत (Basic) वस्तु थी जो उसका सत्त्व होना चाहिए, वही उसमें नहीं है, गोभी की तरह पत्ते-ही-पत्ते हैं।

जीवन के सब पहलू कमल-पंखुड़ियों के समान

इसीलिए गांधी ने जीवन के सारे पहलुओं को कमल की पंखुड़ियों की तरह एक साथ लिया। इसीको समग्रता की दृष्टि कहते हैं। एक दृष्टि का नाम पृथक्करण की दृष्टि Fragmentation की दृष्टि, जीवन के टुकड़े-टुकड़े करने की दृष्टि। दूसरी का नाम है समन्वयात्मक दृष्टि, समग्रता की दृष्टि। इस समग्रता में व्यक्ति भी पूर्ण है समुदाय भी पूर्ण है। व्यष्टि भी पूर्ण है समष्टि भी पूर्ण है। हर मनुष्य की विभूति भी पूर्ण है और सब मनुष्यों की विभूतियों का जहाँ सम्मिलन होता है वह समाज भी अपने में पूर्ण है। 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'। इसे ही Integral Personality कहते हैं। हर मनुष्य अपने में समग्र इकाई है अंश नहीं है।

०

१८-१ (प्रात)

वस्तुनिष्ठा ही सत्यनिष्ठा ४

वस्तुनिष्ठा और सत्यनिष्ठा में क्या अनुबंध है ? इसके दो पहलू मैंने बतलाए। एक यह कि तत्त्वदर्शन और आचरण में क्या संबंध है ? सिद्धान्त और व्यवहार, दर्शन और चरण, तत्त्वज्ञान और आचार में क्या संबंध है ? दूसरा, क्या ये जीवन के दो भिन्न विभाग हैं ? क्या वे ऐसे विभाग हैं कि एक-दूसरे के साथ कोई अनुबंध न हो ?

सिद्धान्त और व्यवहार का समन्वय

सिद्धान्त में और आचार में, दर्शन में और वर्तन में कोई संबंध है या सिद्धान्त और व्यवहार का क्षेत्र अलग है ? कई लोगों ने जीवन के दो क्षेत्रों में एक आत्यन्तिक भेद मान लिया है कि सिद्धान्त, आदर्श या दर्शन के क्षेत्र में व्यवहार के नियम लागू नहीं होते और व्यवहार के क्षेत्र में सिद्धान्त लागू नहीं होते। हम कहते हैं कि वस्तुनिष्ठा या व्यवहार अपने में कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, क्योंकि व्यवहार नित्य परिवर्तनशील है। लेकिन इस नित्य परिवर्तनशील को मापने का जो मानदण्ड होगा वह बदलनेवाला नहीं है। पैमाना यदि बदलनेवाला होगा तो व्यवहार अप्रतिष्ठित होगा। यानी जिस समय हम जो करेंगे वही सही माना जायगा। सही और गलत काम का कोई माप हमारे पास नहीं रहेगा। इसलिए इन दोनों में आत्यन्तिक भेद नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए। सत्यनिष्ठ मनुष्य वस्तुनिष्ठ ही होता है, वह वस्तु-रहित नहीं हो सकता। जिसका व्यवहार सत्यनिष्ठ हो, उस मनुष्य के व्यवहार से सिद्धान्त की व्यावहारिकता की परीक्षा होती है। दर्शन, तत्त्वज्ञान क्या जीवन के लिए उपयोगी है ? क्या जीवन में चरितार्थ हो सकता है ?

वैज्ञानिक है। रूस का आदमी कहता है कि यह मूर्खवाद है पूँजीपतियों का विज्ञान है। इस तरह विज्ञान में दो भेद हो गये। एक पूँजीपतियों का विज्ञान और दूसरा क्रांतिकारियों का विज्ञान। विज्ञान की ही दो पंक्ति बन जाती है, तो विज्ञान में वैज्ञानिकता ही नहीं रहती है। तो फिर विज्ञान में कौन-सा गुण होना चाहिए?—निरपेक्षता और प्रामाणिकता। विज्ञान निरपेक्ष होना चाहिए और प्रामाणिक होना चाहिए। निरपेक्ष का मतलब है उसमें वैज्ञानिक के मनोविकार नहीं आने चाहिए। वैज्ञानिक साधुपुरुष होना चाहिए। उसके चित्त में विकार नहीं होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि वह दूसरों के साथ अपनी पत्नी माँ आदि के साथ जो व्यवहार करता है वहाँ कोई व्यवहार नहीं होना चाहिए। लेकिन लैबोरेटरी में जब बैठता है तो वह आत्मनिष्ठ (Subjective) नहीं होता, वस्तुनिष्ठ (Objective) होता है। उसके मन के विचार और विकार वैज्ञानिक शोध के साथ मिलना नहीं चाहिए। आज सम्यनिष्ठ मनुष्य में उतनी ही प्रामाणिकता और निरपेक्षता की जरूरत है जितनी वैज्ञानिक में है। वैज्ञानिक की यही मर्यादा है कि वह पक्षपाती नहीं हो सकता। यही सम्यनिष्ठ आदमी की भी मर्यादा है।

विज्ञान के साथ मानवता बढ़े

सम्यनिष्ठा और वस्तुनिष्ठा में समानता आ गयी इसलिए उनमें अनुबंध आ गया। कहा जाता है कि आज के युग में वेदान्त और विज्ञान, आध्यात्मिकता और वैज्ञानिक आचरण—इन दोनों में एकरूपता होनी चाहिए। दोनों सम्पन्न होने चाहिए, असन्तुलन नहीं। मनुष्य की वैज्ञानिकता बढ़ती है तो मानवता कम होने की कोई आवश्यकता नहीं है। विरागों की संख्या बढ़ रही है तो प्रकाश भी साथ-साथ बढ़ना चाहिए। इसी तरह विज्ञान यदि भौतिक प्रगति का वाहक है तो विज्ञान के साथ-साथ मानवता के भी वाहक होना चाहिए। यह नहीं हो रहा है, इसलिए सारी समस्याएं आयी।

वस्तुनिष्ठा जड़वाद नहीं है

वस्तुनिष्ठा के साथ-साथ सत्यनिष्ठा क्यों नहीं बढ़ रही है ? वस्तुनिष्ठा Materialism नहीं है। जिसे मेटीरियालिज्म कहते हैं जड़वाद कहते हैं वह अलग चीज है, वस्तुनिष्ठा अलग चीज है। Objectivity का अर्थ जड़वाद नहीं है और न आध्यात्मिकता का अर्थ Subjectivity ही है। अध्यात्म केवल कल्पना-विलास नहीं है। इसलिए मैंने धर्म को अध्यात्म से अलग कर दिया। अध्यात्म कोई सिद्धान्त नहीं है, जीवन का एक तत्त्व है। इसी तरह सृष्टि में जो शक्ति है उसका नाम वस्तु है सृष्टि में जो वस्तुगत शक्ति है, उसको हम Object कहते हैं। इस Objectivity को पहचानना विज्ञान है और मनुष्य में छिपे हुए व्यक्तिगत और सामाजिक तथ्य को पहचानना अध्यात्म कहलाता है। इन दोनों में इस प्रकार का अनुबन्ध है इसलिए इन दोनों को देखने की हमारी शक्ति हमारी दृष्टि समन्वयात्मक होनी चाहिए।

आज का मनुष्य कहता है कि आपके धर्म के क्षेत्र में सत्य है। समझाना-बुझाना विचार-विनिमय ये सब धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र के लिए आवश्यक है। यह उपयुक्त साधन है। वह कहता है कि धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में लोगों को समझाना चाहिए, बौद्धिक समाधान करना चाहिए, उनके साथ विनयपूर्वक मधुर विचार करना चाहिए। यह सब धर्म या अध्यात्म के क्षेत्र में ठीक है लेकिन राजनीति के क्षेत्र में इससे काम नहीं चलेगा। तो क्या धर्म के व्यावहारिक क्षेत्र में यह काम दे सकेगा ? वह कहेगा कि नहीं धर्म का भी जो व्यावहारिक क्षेत्र है, वहाँ यह काम नहीं दे सकता। धर्म का व्यावहारिक क्षेत्र कौन-सा है ? मठ मन्दिर और पुरोहित। ये तीनों कहेंगे अध्यात्म के क्षेत्र में जो सिद्धान्त काम करता है वह धर्म के व्यावहारिक क्षेत्र के लिए उपयोगी नहीं है।

समग्र व्यक्तित्व

इस प्रकार धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में व्यावहारिकता को अलग कर दिया गया और धर्म को अलग कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि मनुष्य के व्यक्तित्व में भेद पैदा हुआ, मनुष्य का व्यक्तित्व विच्छिन्न हो गया। हमें विच्छिन्न व्यक्तित्व के बजाय समूचा और समान व्यक्तित्व चाहिए। मनुष्य के व्यक्तित्व के दो विभाग नहीं होने चाहिए। दो टुकड़े नहीं तो क्या दो पल्ले होंगे? दो तहें होंगी? धोती को मोड़ दिया तो धोती एक ही है, पर एक धोती के दो पल्ले हो गये। तो क्या मनुष्य का व्यक्तित्व दुहरा होगा? दोहरा व्यक्तित्व और विच्छिन्न व्यक्तित्व को ठीक समझ लेना है। क्या मनुष्य के व्यक्तित्व के ऐसे भिन्न-भिन्न स्तर हैं? मान लिया कि भिन्न कमरे, खाने या पिंजरा नहीं है। एक ही धोती को एक बार मोड़ा तो दो स्तर हो गये फिर मोड़ दिया तो चार स्तर हो गये। तो क्या मनुष्य के जीवन में भी यह धार्मिक स्तर है, यह राजनीतिक स्तर है, यह आर्थिक स्तर है—इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं? वह स्तर नहीं है। वह कमल के फूल की तरह एक समग्र वस्तु है। उसमें अलग-अलग पंखुड़ियों के होने पर भी कमल एक ही है। जीवन में अलग-अलग परतें नहीं हैं। वह समग्र माना गया है। यह समग्रता उसके व्यवहार में प्रकट होनी चाहिए।

मनुष्य एकान्त प्रिय नहीं हो सकता

सवाल यह है कि मनुष्य के जिस व्यवहार में समग्रता प्रकट होती है वह व्यवहार क्या एकान्त में हो सकता है? मनुष्य का व्यवहार एकान्त में नहीं है। एकान्त में जो व्यवहार होता है उसका कोई मूल्य नहीं है। जंगल में एकान्त में मनुष्य एक जीव के नाते पर जी सकता है लेकिन मनुष्य के नाते नहीं। मनुष्य की मनुष्यता एकान्त में सिद्ध नहीं होती। यह सम्भव नहीं है। बचपन में अपने एक उपन्यास में लिखा है कि

एकान्त-प्रिय व्यक्ति या तो देवता है या पशु। मनुष्य एकान्त-प्रिय नहीं हो सकता। एकान्त में मनुष्यता के लिए अवसर नहीं है। मनुष्यता के लिए अवसर वहाँ है, जहाँ व्यवहार हो और व्यवहार का अर्थ ही यह है कि दूसरा कोई है। अगर दूसरा कोई न हो तो व्यवहार ही कैसा?

मनुष्य की मनुष्यता और उसकी सामाजिकता दो भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। विश्लेषण या विवेचन के लिए अलग-अलग मानें तो यह भिन्न वस्तु है। अलग मानना एक चीज है और अलग होना दूसरी। ये तो दो अलग-अलग पहलू हैं दो विभाग नहीं हैं। यह मनुष्य का व्यक्तित्व या मनुष्य की सामाजिकता है? इस प्रकार दोनों में संघर्ष की कल्पना कर लेते हैं। मैं व्यक्ति हूँ या समाज का सदस्य हूँ? मनुष्य ने अपनी संस्थाएँ बनायी हैं। उनकी सदस्यता अलग है लेकिन समाज की सदस्यता अलग है। समाज की सदस्यता स्वाभाविक है। यह सदस्यता और मनुष्यता दोनों एक हैं अनुबन्धी हैं। इसलिए हमारे मन में कोई विरोध भाव नहीं होना चाहिए कि यह व्यक्तिवाद है और यह समाजवाद। जहाँ वाद है, वहाँ संघर्ष है। व्यक्तिवाद और समाजवाद अलग हैं लेकिन मनुष्य का व्यक्तित्व और उसकी सामाजिकता में दोनों अविरोधी हैं। केवल अविरोधी ही नहीं दोनों परस्पर पोषक हैं। व्यक्तित्व का विकास सामाजिकता से होता है और सामाजिकता की प्रगति व्यक्ति के विकास से होती है। इस तरह ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। एक-दूसरे के भरोसे दोनों की उन्नति होती है। अब यह विरोध (Conflict) नहीं रहेगा कि मेरा कर्तव्य श्रेष्ठ है या मेरा अधिकार श्रेष्ठ? समाज में सामाजिक नियन्त्रण का अधिक महत्त्व है या व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिक महत्त्व है? सामाजिक नियन्त्रण और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विरोध कृत्रिम है, यह वास्तविक विरोध नहीं है, क्योंकि व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज से अलग नहीं है और व्यक्ति का विकास भी सामाजिकता से अलग नहीं है। जहाँ सामाजिकता न हो वहाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास नहीं है।

स्वतन्त्रता यानी दायित्व

यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य क्या वस्तु है ? कम तो है स्वातन्त्र्य लेकिन उसका आशय है दायित्व और जिम्मेदारी। मनुष्य की मनुष्यता का मतलब यही है। अपने बुरे कामों के लिए भी वह जिम्मेदार है और अपने भले कामों के लिए भी। उसको ही मनुष्य कहते हैं। यह मनुष्य की विशेषता है। मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है ? वैज्ञानिक लोग बहुत से अन्तर बतलायेंगे। एक तो उसका अँगूठा शेष सारी अँगुलियों को छू लेता है। दूसरा है उसकी भाषा। ऐसी कई विशेषताएँ गिनी जाती हैं। इन सब विशेषताओं से अलग एक और विशेषता है, जो दूसरे जीवों से उसको अलग करनेवाली है। वह है मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कामों के लिए स्वयं जिम्मेदार है। यह मनुष्य का कर्म-स्वातन्त्र्य कहलाता है।

कर्म-स्वातन्त्र्य

कर्म-स्वातन्त्र्य का मतलब क्या है ? जीने की स्वतन्त्रता हमारे लिए अनिवार्य है। जीने की स्वतन्त्रता से मतलब अपनी मर्जी के मुताबिक व्यवहार करने की स्वतन्त्रता होना चाहिए। अगर व्यवहार की स्वतन्त्रता नहीं होती है तो वह स्वतन्त्रता वास्तविक नहीं होती। मनुष्य की वास्तविक और मूलभूत स्वतन्त्रता है कर्म-स्वतन्त्रता। कर्म-स्वातन्त्र्य का मतलब यह है कि अपने अच्छे तथा बुरे कामों के फल का मिलना। उसके लिए हरएक जिम्मेदार है। इसको हमारे यहाँ अध्यात्मशास्त्र में कर्म सिद्धान्त कहा गया है। इसमें से पुनर्जन्म और दूसरे सिद्धान्त निकले हैं। यहाँ उनको छोड़ देंगे। मैंने पहले ही कहा है कि जन्म और मृत्यु का अनुभव नहीं होता वह समझनीय नहीं है। जिसका समझान नहीं हो सकता वह वैज्ञानिक नहीं होता। इसमें भी एक तर्क है। कोई चीज बहुत तर्क संगत हो सकती है लेकिन अन्त में वह सार्वजनीय नहीं है, जिसका हम प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं दे सकते और दूसरे प्रमाण से भी सिद्ध नहीं कर

सकते। वह अनुभवगम्य नहीं है। जो अनुभव का विषय नहीं हो सकता उसे सिद्धान्त कहते हैं। पुनर्जन्म सिद्धान्त है, उपपत्ति है, वैज्ञानिक सत्य नहीं है। जो अनुभव और प्रयोग का विषय नहीं है, उसे हम वैज्ञानिक नहीं कहते। लेकिन कर्म-सिद्धान्त एक सत्य है। मनुष्य यदि अपने अच्छे-बुरे कामों के लिए स्वयं जिम्मेवार न हो तो समाज की धारणा ही असम्भव हो रहेगी। फिर मनुष्यता भी असम्भव हो जायगी। इसे समझ लेना बहुत आवश्यक है क्योंकि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में कई प्रकार के भ्रम हो सकते हैं। इसलिए पहले मूलभूत स्वतन्त्रता का विचार कर लेना चाहिए।

मनुष्य की मूलभूत स्वतंत्रता का गौरव उसकी प्रतिष्ठा कर्म-स्वातंत्र्य में है। हमें अपनी मर्जी के मुताबिक करने की आजादी है। मर्जी के मुताबिक करने में तीन चीजें आती हैं कर्तुम्, अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम्। करना न करना अन्यथा करना। इन तीन चीजों का नाम है, कर्म स्वातंत्र्य। करने की आजादी है न करने की आजादी है दूसरी तरह करने की आजादी है। मैं आपसे कहता हूँ कि 'मुझे बेंगलोर जाना है। आपने कहा कि 'ठीक आपकी खुशी। इस खुशी का मतलब क्या? आपको भी खुशी है। फिर यदि आप मुझे बीच में जायेंगे तो फिर खुशी का मतलब क्या होगा? मैं कहूँगा कि 'नहीं मेरा दिल बदल गया अब बेंगलोर नहीं जाना है। तो आप कहेंगे 'पहले 'हाँ' क्यों कहा? अब चलना ही पड़ेगा?' बेंगलोर जाने की आजादी है, इसका मतलब क्या हुआ? जाने की भी आजादी है, न जाने की भी आजादी है। कर्तुम् अकर्तुम् और अन्यथाकर्तुम्। मैं कहूँगा कि अमुक की कार से जाऊँगा। फिर कार के बदले बस से चला जाऊँगा। या बेंगलोर न जाकर 'मागाडी' जाऊँगा। दूसरी तरह करने की भी आजादी होनी चाहिए। जो काम मैं कर रहा हूँ, उसको बदलकर उस काम का तरीका भी बदल देने और उसका स्वरूप ही बदल डालने तक का मुझे अधिकार है। यह

व्यक्ति-स्वातंत्र्य कहलाता है। नहीं तो मनुष्य अपने काम का जिम्मेदार नहीं हो सकता। मनुष्य को यदि कर्म करने की आजादी न हो तो वह अपने काम का जिम्मेदार नहीं बन सकता। कैदी अपने हर काम के लिए जिम्मेदार नहीं है। जब तक वह कैदी है, उसके दिनभर के काम के लिए वह नहीं जेलर जिम्मेदार है। कैदी कैदी क्यों बना? इसलिए कि वह अपने काम के लिए जिम्मेदार नहीं है। दूसरा उदाहरण स्त्री का लीजिये। स्त्री अपने कामों के लिए जिम्मेदार नहीं। किसी भी धार्मिक विधि में स्त्री पति की सहायता करती है, लेकिन अनुष्ठान नहीं करती। वह यजमान नहीं हो सकती। यजमान आप और सहायक आपकी स्त्री। नतीजा यह कि आप जो कुछ भी पुण्य-काम करते हैं उसके फल में उसको हिस्सा मिलता है क्योंकि उसके संरक्षण का जिम्मा आप पर है। संरक्षण की जिम्मेदारी अगर आपकी है तो स्त्री की स्वतंत्रता नहीं रहेगी। आपकी गाय मेरा खेत चर जाती है, तो सजा उसको नहीं आपको होती है उसके मालिक को होती है।

जिम्मेदारी और आजादी

'स्त्री जिम्मेदार नहीं है' यह बात मैं पुराने विचार के अनुसार कह रहा हूं। आज जिम्मेदारी उसकी है जो संस्कृति का संचालन करते हैं। यहां भी नागरिकता वास्तविक नहीं हुई है फिर भी आज कागज पर आपने उसे जिम्मेदार मान लिया है। पुराने विचार में कागज पर भी उसको जिम्मेदार नहीं माना गया है। इसलिए उसके अच्छे-बुरे कामों के लिए जिम्मेदार पुरुष है। इसका मतलब यह है कि जितनी जिम्मेदारी है उतनी ही आजादी है। जहां जिम्मेदारी नहीं है वहां आजादी नहीं है। सामाजिक जीवन अब बचपना नहीं है। आज का सारा समाज इस सिद्धान्त पर चल रहा है। इसमें साम्यवादी समाज भी शामिल है और जो अन्य यूरोपियन टोटलिटेरियन समाज हैं वे भी शामिल हैं जिनमें

सवंग्राही राज्य-सत्तावाद है। सब जगह यही सिद्धान्त चल रहा है कि मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कामों के लिए जिम्मेदार नहीं है। ट्राटस्की बैरिया मालनकोव बुलगानिन—इन सबको क्यों खतम किया गया? ये अपने काम के लिए जिम्मेदार नहीं थे। सन् १९१७ से लेकर १९६ तक सारी जिम्मेदारी राज्य ने ली है। तो इनके बुरे कामों के लिए जिम्मेदार राज्य है। जैसे कुछ अंश में राम-राज्य में माना गया है कि बूढ़े बाप का जवान बेटा मर गया तो जिम्मेदार राम है। यह स्टेटिज्म यानी राज्यसत्तावाद कहलाता है। राज्यसत्तावाद में व्यक्ति की नागरिक की स्वतंत्रता नहीं है। स्वतंत्रता नहीं है, इसलिए जिम्मेदारी भी नहीं है। मैं आलसी हूँ पर उसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं है। मैं भूखा हूँ फिर भी इसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं है। मैं भूखों को इकट्ठा करता हूँ। जुलूस निकालकर मुख्यमंत्री के सामने मोर्चा बनाता हूँ। मैं आलसी हूँ भूखा हूँ—इसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं मंत्री की है। इस तरह आदमी अपनी जितनी जिम्मेदारी संस्थाओं पर छोड़ देता है, उतनी उसकी स्वतंत्रता क्षीण हो जाती है।

दायित्व की प्रतिष्ठा

हमारे देश का पुराना विचार भिन्न विचार है। यहाँ मनुष्य के कर्म के लिए ईश्वर भी जिम्मेदार नहीं है। यह गूढ़ तत्त्वज्ञान है। ईश्वर का अनुग्राहित्व अलग है। वह आपको माफ कर देता है। वह ईश्वर का ऐश्वर्य है। लेकिन मेरे पाप की जिम्मेदारी भगवान् पर नहीं है। मेरे पाप के लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ—कोई संस्था कोई राज्य या भगवान् जिम्मेदार नहीं है। यह मूलभूत सिद्धान्त है। मेरी मनुष्यता मेरी स्वतंत्रता मेरी प्रतिष्ठा सभी इसका इस बात में है कि मैं अपने पाप के लिए जिम्मेदार हूँ। यह दायित्व की भावना ही हमारे समाज की रचना का आधार है। धर्म्म की मार्गदर्शकता का यह आधार है।

अगर यह न हो तो मनुष्यता ही नहीं। जब हम व्यक्तिगत स्वतंत्रता कहते हैं, तब उसका अर्थ क्या है? उसका अर्थ यह नहीं है कि हम स्वच्छन्द व्यवहार की छूट माँग रहे हैं। स्वच्छन्द व्यवहार की छूट अलग वस्तु है। रास्ते पर कितनी मोटरें चलती हैं? अगर वे सब स्वच्छन्द ही व्यवहार करने लगें तो क्या होगा? कोई दाहिनी ओर तो कोई बायीं ओर जायगी। सारी मोटरें टकरायगी एक भी आगे नहीं जा सकेगी। यह अराजकता या अव्यवस्था कहलाती है। इसमें जिम्मेवारी नहीं आती। समाज का संगठन ऐसा हो जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए अधिक-से-अधिक अवसर मिले। यानी ऐसा समाज बनाना है जिसमें व्यक्ति की जिम्मेवारी के लिए अधिक-से-अधिक गुंजाइश हो। यहाँ समाज-रचना का दूसरा सिद्धान्त आता है। जितने क्रान्तिकारी लोग हैं—समाज-वादी, साम्यवादी और सर्वोदय-निष्ठ सब यही मानते हैं कि मनुष्य के कर्म की प्रेरणा भय और लोभ नहीं होनी चाहिए। मनुष्य जो करता है, उसके पीछे प्रेरणा होती है। वह भय की भी न हो लालच की भी न हो। क्यों? अगर हम लालच और डर से करते हैं तो हमारा व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। मनुष्यता की हानि हो जाती है। इसलिए क्रान्तिकारी कहता है कि ऐसा समाज बनाओ जिसमें मनुष्य के लिए लालच और भय के मौके कम-से-कम हो। जिस समाज में इन दोनों के मौके कम-से-कम होंगे वह हमारा आदर्श समाज होगा। यह कोई नमूना नहीं है। हम यह नहीं कह रहे हैं कि ऐसा एक ढाँचा हो। हम यह कह रहे हैं कि ऐसा समाज हो जिसमें मनुष्य की जिम्मेवारी के लिए ज्यादा-से-ज्यादा मौका हो और भय और लालच के लिए कम-से-कम मौका हो। मनुष्य जिम्मेवार तब होगा जब समाज में लालच और डर के कारण नहीं रहेंगे।

भय और लोभ की प्रेरणा

डर की प्रेरणा का नाम सैनिकशाही है और लालच की प्रेरणा का

नाम मुनाफाखोरी या पूंजीवाद। इन दो प्रेरणाओं से जो समाज मु
होता है, उसे हम मुक्त समाज कहते हैं। शासनमुक्त समाज कौन-सा है
वह समाज जो भय-मुक्त है। शोषण-मुक्त समाज कौन-सा है? वह
लोभ-मुक्त है। इसकी पहचान क्या? तीन पहचानें बताता हूं। प
अदालत दूसरी पुलिस और तीसरी जेल। मनुष्य की आजादी उस
जिम्मेदारी पर है। वह अपने अच्छे कामों के लिए भी जिम्मेवार हो
और बुरे कामों के लिए भी। आप चाहते हैं कि मनुष्य अच्छे काम
और बुरे काम न करे। अच्छे कामों के लिए लालच दिखाते हैं और
कामों के लिए डर। दो प्रेरणाएं समाज में आयीं—लोभ और भय
इनाम और सजा। अच्छे काम के लिए इनाम या तारीफ और बुरे क
के लिए सजा या निन्दा। लेकिन यह जो लोभ और भय की प्रेरणा
यह सत्यनिष्ठा की प्रेरणा नहीं है प्रामाणिकता की प्रेरणा नहीं है।

प्रेरणा सत्य की हो

सत्यनिष्ठ मनुष्य प्रामाणिक होना चाहिए। निर्भय होना चाहि
उस बाह्य प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। फिर उस
प्रेरणा क्या हो? समाजवाद और साम्यवाद कहता है कि सामाजि
प्रेरणा रहेगी। अब यह सामाजिक प्रेरणा क्या है? कहां से आयी
अब न तो कहा कि या तो नरक का डर होगा या स्वर्ग का ला
होगा। जितनी आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्र की प्रेरणाएं हैं दुर्भाग्य
सारी-की-सारी भौतिक प्रेरणाएं हैं। अच्छे काम करो ईमानदारी से र
किसीकी बुराई मत करो—इसके बदले में क्या मिलेगा? आपको
मिलेगा। पुण्य कौन-सा? पीने के लिए अमृत मिलेगा और सैर के लि
शराब मिलेगा। हम कहते हैं आध्यात्मिकता! भौतिक धन में क
जितने धन बतलाये गये हैं वे सारे-के-सारे भौतिक उपभोग और भो
उपभोग के लिए हैं। बुरे काम के लिए तो यमराज के नाम पर

जाता है कि नरक में पड़ोगे, वहाँ कड़ाही में तले जाओगे, शूई पर को रखे जाओगे इत्यादि। धर्म में जितने सुख और दुःख बतलाये गये हैं नरक के कष्ट और स्वर्ग के आराम सारे-के-सारे शारीरिक हैं, आत्मा के विज्ञान नहीं हैं। इस प्रकार धार्मिक प्रेरणाएँ शारीरिक और भौतिक प्रेरणाएँ बन गयी हैं। न तो वे वस्तुनिष्ठ की प्रेरणाएँ हैं न सत्यनिष्ठ की। वैज्ञानिक अगर भय और लोभ से काम करना शुरू कर देंगे तो क्या होगा? भिन्न-भिन्न पक्षों के नेताओं का कहना है कि वैज्ञानिक हमारे पक्ष के हित में काम करेंगे तो इतना-इतना पैसा देंगे। लोग कहते हैं कि अमरीका कम्पनीवालों ने वैज्ञानिकों से कहा कि अगर आप हमारे पक्ष में निर्णय करेंगे तो आपको दो लाख रुपये देंगे। वहाँ वैज्ञानिक भ्रष्ट हो जाते हैं। जहाँ वैज्ञानिक भ्रष्ट होता है वहाँ विज्ञान नष्ट हो जाता है। विज्ञान में भय और लोभ की प्रेरणा नहीं होनी चाहिए। अगर विज्ञान में नहीं होनी चाहिए तो फिर नैतिक आचरणों में तो बिल्कुल नहीं होनी चाहिए।

सामाजिक प्रेरणा

समाज में लोभ और भय न रहें, यह सभी क्रान्तिकारियों का संकल्प है। जयप्रकाश बाबू के सामने यही सवाल आया कि समाज में ये दोनों— दण्ड और भय—की प्रेरणाएँ बिल्कुल नहीं होनी चाहिए तब उन्होंने अनुभव किया कि समाजवाद अपर्याप्त है। उन्होंने यह नहीं कहा कि समाजवाद और साम्यवाद के आदर्श मिथ्या हैं। उन्होंने समाजवाद को और साम्यवाद को अपर्याप्त कहा। यह नहीं तो फिर प्रेरणा कहाँ से मिल सकती है? सामाजिक प्रेरणा अवान्तर प्रेरणा नहीं है, बाहर की प्रेरणा नहीं है। इसका जवाब सर्वोदय देता है, गांधी देता है। सामाजिकता मनुष्य का स्वभाव है। लोभ और भय की प्रेरणाएँ कृत्रिम प्रेरणाएँ हैं। इनको हटा दें तो सामाजिकता मनुष्य के स्वभाव में आ जायगी। स्नेह

सीखना मनुष्य का स्वभाव है, मनुष्य संसर्गप्रिय है, सहवास-परायण है। वह दूसरों के साथ रहना चाहता है।

अपने-आपसे नहीं बच सकते

आप साइकिल पर जा रहे हैं। मैं रास्ते से पैदल चला जा रहा हूं। आपकी साइकिल का मुझे धक्का लगा और मैं गिर पड़ा। मुझे चोट लग गयी और खून निकलने लगा। अब यदि आपके मन में यह भय नहीं है कि मैं आपको मारूंगा या पुलिस के हवाले करूंगा तो आपके मन में दुःख होता है। मैं आपको धमकाता नहीं पीटता भी नहीं और पुलिस में रिपोर्ट भी नहीं करता। ऐसी स्थिति में आप क्रूर-से-क्रूर मनुष्य हों तब भी आपके मन में दुःख होगा। दुःख क्यों होता है? आप समझते हैं कि आप इसके जिम्मेवार हैं। सजा से बचने के लिए आप सफाई दें लेकिन अपने-आपसे बचने के लिए कोई सफाई नहीं है। आप अपने दिल को नहीं समझा सकते। तर्क से आप समझा दें तो भी आपका मन ही कहेगा कि जिम्मेवारी तेरी है। तर्क से समझाने से व्यथा नहीं मिटती। यह स्वाभाविक है। वहां यह मलिन हो जाता है, वहां कुसंस्कार आ जाता है। समाज के कुछ बुरे संस्कार हैं जिनके कारण स्वभाव मलिन हो जाता है।

कृत्रिम प्रेरणाओं का निवारण

बाहर में जो व्यक्ति दुष्ट-से-दुष्ट है, पुलिसवाले जिसे बड़ा अपराधी समझते हैं और मोहल्लेवाले जिसे बदमाश कहते हैं उसे आप अपने साथ सिनेमा ले जाइये। पुराने-से-पुराना सिनेमा दिखाइये—सत्य हरिश्चन्द्र का। तारामती बाजार में बिकने जाती है, तो आप उसकी शक्ल देखिये वह रोता दीखेगा। वह आदमी क्यों रोता है? इसलिए कि उसकी जो मनो-वृत्ति बाहर मलिन हो गयी है, वहां उसके उमड़ने का अवसर मिला। जो स्वाभाविक वृत्ति है वह बाहर की रुकावट न होने पर अपने-आप

प्रकट होती है, यह स्वाभाविक है। सिनेमा में आप यह भी देखते है कि जिस वक्त हरिश्चन्द्र अमुक काम में जीत जाता है और विश्वामित्र हार जाता है, तो लोग ताली बजाते है दुर्जन-से-दुर्जन भी ताली बजाता है। वे वे होते है जिनकी सूक्ष्म और कोमल भावनाएँ क्षीण हो गयी होती है। यह मनुष्य का स्वभाव है, मनुष्यता है। इसलिए प्रेरणा को बाहर नहीं खोजना है। कुसंस्कार के कारण जो मिथ्या प्रेरणाएँ, क्षुद्र और कृत्रिम प्रेरणाएँ आ गयी है उनका निवारण खोजना है। ऐसा समाज बनाना है, जिसमे कृत्रिम प्रेरणाओ के लिए कोई अवसर न हो।

अदालत, पुलिस और जेल

इन प्रेरणाओ से जो तीन संस्थाएँ बनी है उनको मैने प्रतीक के रूप मे लिया एक अदालत दूसरी पुलिस और तीसरी जेल। ये तीनों किस-लिए है ? आपको अपने बुरे कामों की सजा देने के लिए। आपके अच्छे कामो के लिए इनाम देनेवाली अलग संस्थाएँ है, उनका विचार यहाँ नहीं करना है। संस्थाओ की भूमिका का हम विचार कर रहे है। अदालत पुलिस और जेल—ये तीनो सभ्य समाज की संस्थाएँ है। सभ्य समाज का लक्षण क्या है ? जिस समाज मे इन तीनो संस्थाओं का अधिक-से-अधिक उपयोग होता हो क्या वह सभ्य समाज है ? कल अगर कोई कहे कि हमारे यहाँ जेल की आबादी ज्यादा बढ़ रही है, उनकी संख्या मे वृद्धि हो रही है तो लोग इससे डर जायँगे क्योकि यह कुसंस्कार है। अगर मै कहूँ कि बैंगलोर की जेल से नागपुर की जेल बड़ी है—आपकी जेल मे डेढ़ हजार कैदी रहते है और हमारे यहाँ तीन हजार रहते है तो क्या वह गौरव का विषय है ? लेकिन वह बतलाता है कि यह बड़े गौरव का विषय है क्योंकि उसमें कुसंस्कार है। यदि जेल का बड़ी होना गौरव का विषय है और उसमे तीन हजार लोगो का रहना खुशी की बात है और उनमें से आप भी एक हो तो ? वह कहता है कि जेल तो तीन हजार लोगों की है,

लेकिन मैं उनमें नहीं हूँ। इसका अर्थ यह कि आप वहाँ नहीं हैं तो फिर कोई भी क्यों रहे ? पुलिस तो चाहिए, लेकिन उससे हमारा सम्बन्ध कभी न आये। यह ठीक है कि आपके यहाँ चोरी हुई, तो आप पुलिस के पास जाते हैं लेकिन आप चाहते नहीं हैं कि चोरी हो और पुलिस के यहाँ जाना पड़े। जिस समय आप पुलिस का उपयोग करते हैं तब भी इच्छा नहीं रहती है कि वैसा मौका न आये। नागपुर की अदालत में एक बेंच कम कर दी गयी तो वहाँ झगड़ा हो रहा है कि 'हमारे यहाँ एक ही बेंच रहेगी ?' एक बेंच में चार-पाँच जज होंगे अब बम्बई में दस-पन्द्रह जज हुए। यह गौरव का विषय है ! आपके यहाँ कितने जज हैं ? पचास। बहुत गौरव की बात है ! 'कानूनबाजी' और 'अदालतबाजी' नागरिकता नहीं है। नागरिकता और मुकदमेबाजी में परस्पर बहुत विरोध है। नीति-परायण, कानूनपरस्त और शान्तिपरायण नागरिक चाहिए, कानूनबद्ध और अदालतबद्ध नहीं। पचास जज जरूर हैं लेकिन उनके सामने जाने का कभी मौका न आये तो भगवान् की बड़ी कृपा है। पुलिस चाहिए, अदालत चाहिए, जेलखाना चाहिए, लेकिन मुझे उनमें से एक भी संस्था में जाने का अवसर नहीं आना चाहिए। अपने लिए जो नहीं चाहिए वह दूसरों के लिए भी नहीं चाहिए। इसे प्रामाणिकता कहते हैं।

नागरिक जिम्मेवारी

अब एक संकेत हुआ है। बजट में यह चाहने लगे हैं कि इन संस्थाओं पर कम-से-कम खर्च होना चाहिए। काँग्रेस से लेकर कम्युनिस्ट तक सभी पार्टियों के सदस्य एक ही माँग करते हैं शिक्षण पर अधिक खर्च हो जेल पर कम हो। ग्राम-उद्योगों पर खर्च अधिक हो पुलिस पर कम हो। राष्ट्र-निर्माण के कामों में अधिक खर्च किया जाय। अब समय बदला है। चीन के आक्रमण का भय है, इसलिए आज की माँग है कि फौज का खर्च अधिक किया जाय। लेकिन आम तौर पर लोगों की माँग

दायित्व और धर्म

जिसे हम व्यक्तिगत स्वातंत्र्य या मानव की स्वतंत्रता कहते हैं उसका आशय क्या है? अटलांटिक चार्टर में फ्रैंकलिन रूजवेल्ट और विन्स्टन चर्चिल ने चार स्वतंत्रताएँ हमारे सामने रखी थीं। उन पर बाद में विचार करेंगे। प्रस्तुत विषय भिन्न प्रकार का है। वे ऐसी स्वतंत्रताएँ थीं जो हमें दूसरों से प्राप्त करनी थीं। यहाँ जिस स्वतंत्रता पर चर्चा कर रहे हैं वह मनुष्य की स्वयंसिद्ध स्वतंत्रता है जिसको हमने जिम्मेवारी दायित्व कहा। यह स्वतंत्रता सामाजिकता की बुनियाद है। सामाजिक संगठन की बात अलग है। समाज को एक संस्था का रूप देना है या राज्य का और सुसंगठित समाज हमारे लिए क्या करे आदि विचार अलग हैं। हम यहाँ मूलभूत स्वतंत्रता की बात कर रहे हैं। अंग्रेजी में दो शब्द हैं—Humanity और Manhood। हमारे यहाँ भी दो शब्द हैं—मानवता और पौरुष। पौरुष में स्त्री भी आ गयी पुरुष भी आ गया। यह पौरुष या Manhood जिस स्वतंत्रता में है, उसका नाम है जिम्मेवारी दायित्व। मैं अपने कामों के लिए जिम्मेवार हूँ और अपने साथियों के कामों के लिए भी जिम्मेवार हूँ। यह पूरी जिम्मेवारी है। अपने पड़ोसी के प्रति इस स्नेह को ही प्रतिवेशीधर्म (Neighbourliness) कहते हैं जब तक पड़ोसीपन नहीं है तब तक पड़ोस नहीं है।

पड़ोसी या प्रवासी

यह मैं इसलिए समझा रहा हूँ कि जिसे लोग कम्युनिटी कहते हैं उसका असली नाम नेबरहुड होना चाहिए। 'कम्युनिटी' में क्या है? केवल

सम्बन्ध है, वह औपचारिक नहीं नैसर्गिक है। यह एक योग है। नैसर्गिक सम्बन्ध स्वायत्त नहीं होता। संस्कृति स्वायत्त है। मनुष्य का जीवन सुसंस्कृत है, प्राकृत नहीं है। मनुष्य का सारा जीवन प्रकृति के अनुसार नहीं चलता क्योंकि वह सामाजिक है। सामाजिक जीवन सभ्य जीवन है, सांस्कृतिक जीवन है। एक पत्रिका में एक कार्टून (व्यंग्यचित्र) था। पत्नी का बर्थडे है। पति उसके लिए मोतियों का हार लाता है। पत्नी कहने लगी "इतना महँगा मोतियों का हार क्यों लाये? मुझसे पूछते तो मैं बता देती कि मुझे एक मोटर की जरूरत थी।" पति ने कहा कि "मैंने बाजार में बहुत खोजा। कल्चर्ड मोटर नहीं मिली, कल्चर्ड मोती मिल गया।" कल्चर्ड मोती नैसर्गिक नहीं है। कल्चर का अर्थ है नकली। लेकिन हम जो कह रहे हैं, उस कल्चर का अर्थ है परिशुद्ध, परिमार्जित परिष्कृत। ऐसा जो शुद्ध परिष्कृत सामाजिक जीवन है, वह स्नेहमूलक होगा। तभी उसमें सामाजिक प्रेरणा आती है। पहले हमने चर्चा की है कि कैसा समाज बनेगा? वह फेडरेशन होगा कि कुटुम्ब होगा? वह Universal collective होगा या Family of men होगा? यह सारा-का-सारा मनुष्य-समाज एक विश्व-कुटुम्ब होगा।

विश्व-संघ और सामान्य नागरिकता

ये दोनों कल्पनाएँ भिन्न-भिन्न हैं। वर्ल्ड-फेडरेशन (विश्व-संघ) अलग चीज है। विश्व-संघ का अर्थ है विश्व-सरकार। यह अन्तर्राष्ट्रीयता है। उसमें कल्पना यह है कि सारे संसार की एक सरकार हो, जिसमें सारे देश शामिल हों। वह औपचारिक संघटन है। राष्ट्रों में और मनुष्यों में एक-दूसरे के प्रति विश्वास न हो, प्रेम न हो, तो इस संघटन का आधार क्या होगा? वे कहते हैं कि आखिरकार एक विश्व-पुलिस हो। इस विश्व-पुलिस की शक्ति क्या होगी? कितनी संख्या होगी? यहाँ के लोगों की जनता का हिसाब और पुलिस की संख्या देखें कि हिन्दुस्तान के बीच कितनी पुलिस है। लोग स्वभाव से शान्तिप्रिय हैं, इसलिए यह पुलिस

काफी है। लोग रोज झगड़ा नहीं करते और हमेशा एक-दूसरे का मकान नहीं जलाते। वहाँ क्या हो रहा है? कोई एक हवाई जहाज रूस के आसमान में उड़ा। अब आसमान के भी हिस्से हो गये हैं। सूर्य-प्रकाश का ही शेष रह गया है। वह भी हो जायगा। हमारे आसमान पर तुम्हारा हवाई जहाज उड़ा, इसलिए हमने गिरा दिया। दोनों शिकायत कर रहे हैं। अपनी ताकत दूसरे पर दिखाने की मनोवृत्ति जहाँ होगी, वहाँ सामूहिक संरक्षण असम्भव है। विश्व-संघ और विश्व-पुलिस का आधार कहाँ है? वह आधार, वह बुनियाद सरकारें नहीं डाल सकतीं। यू० एन० ओ० में यह चर्चा चलती है, तो भी क्या होगा? वह कहता है, हमारा हवाई जहाज गलती से आ गया। दूसरा कहता है, गलती से नहीं जान-बूझकर आया। यानी एक-दूसरे पर विश्वास नहीं है। लेकिन झण्डों पर लिखा था कि हम शान्ति चाहते हैं, हथियार नहीं। वहाँ के साधारण लोग ऐसे झण्डे लेकर गये थे। वहाँ आइजनहावर ने कहा, दुनिया-भर के लोग लड़ाई नहीं करते, सरकारें लड़ाई करती हैं। यू० एन० ओ० सरकारों के प्रतिनिधियों का संगठन है, लोक-प्रतिनिधियों का नहीं। इसलिए विश्व-संघ, विश्व-समूह या विश्व-सरकार या वर्ल्ड कम्युनिटी आदि की बात आज औपचारिक बुनियाद पर है। आप एक कृत्रिम परिवार बनाना चाहते हैं। यहाँ विश्व-कुटुम्ब की बात हो रही है, यहाँ विशाल ग्राम परिवार और मानवीय परिवार की बात कर रहा हूँ। विश्व कुटुम्ब हमारे यहाँ पुराना शब्द है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। विश्व-कुटुम्ब की भावना पुरानी भावना है, लेकिन आज के सन्दर्भ में उसका अर्थ है कि दुनियाभर के साधारण लोग अब आपस में भी नहीं।

मनुष्यता और नागरिकता

[illegible] या नागरिकता से अधिक व्यापक मनुष्य की मानवता है। [illegible] । नागरिकता छीन ली जा सकती है। नागरिकता [illegible] जा सकती है, नागरिकता नैमित्तिक भी है, लेकिन मानव की बा

समाज की दी हुई वस्तु है। औपचारिक है। कोई बहुत बड़ा अपराध है। उसकी नागरिकता क्षीण हो जाती है। आप अमेरिका में कुछ दिन रहें, तो आपको अमेरिका की नागरिकता मिल जाती है। यह नागरिकता दी जा सकती है दी जा सकती है। मनुष्यता दी नहीं जा सकती और ली भी नहीं जा सकती। मनुष्यता स्वयंसिद्ध है। इसलिए विश्व-कुटुम्ब का आधार खोजना होगा। विश्व-कुटुम्ब की बुनियाद कहाँ है? इसका जवाब राजनैतिक संस्थाएँ नहीं दे सकतीं इसका जवाब क्रान्तिकारी को देना पड़ता है। जहाँ वह रहता है वहाँ विश्व-कुटुम्ब की बुनियाद डालता है। वह संसद् में नहीं डाली जायगी। वह बुनियाद यदि विश्व-समाज में डाली जाती है, तो संसद् में उसे कार्यान्वित किया जायगा उस पर मुहर लगायी जायगी। लेकिन यह भावना संसद् पैदा नहीं करेगी। इसलिए विश्व कुटुम्ब की बात करते समय यह चीज हमारी समझ में आ जानी चाहिए कि लोकतन्त्र विधायक संसद् की सर्वोपरि सत्ता ही नहीं है। संसद् का वैधानिक सत्ता सर्वोपरि होगी लेकिन सार्वभौमसत्ता अधिसत्ता अन्तिम सत्ता नागरिक की है। नागरिक की अधिसत्ता का आधार नागरिकों की पारस्परिकता है नागरिकों की पारस्परिक भावना और सहयोग है। इस पारस्परिकता का नाम है स्नेह। स्नेह निरपेक्ष होता है। प्रेम ही दुनिया में एसी चीज है जो निरपेक्ष होता है। कामुक व्यक्ति की कामुकता हो चाहे रूप-लोलुप पुरुष का वैषयिक प्रेम हो इनका प्रेम जहाँ होता है वहाँ जवाब भी नहीं होता है। प्रेम प्रतिप्रेम-निरपेक्ष होता है। एक लड़का एक लड़की से प्रेम करता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह भी इससे प्रेम करती है। वह नहीं करती तो भी वह प्रेम करता नहीं छोड़ता। प्रम के साथ क्षोभ करने लगता है। भर्तृहरि ने कहा कि जिस स्त्री से मैं प्रेम करता हूँ, वह मुझसे प्रेम नहीं करती किसी दूसरे से प्रेम करती है। वह दूसरा किसी तीसरी से प्रेम करता है। इसलिए मेरे प्रेम को उसके प्रम को और उस तीसरी के प्रेम को—सबको धिक्कार

कुटुम्ब-संस्था परम्परागत संस्था है। इसलिए उसका विरोध समाजवादियों और साम्यवादियों ने किया है। उन्होंने कहा कि हम इस परम्परागत कुटुम्ब-संस्था को मिटा देंगे। क्यों? इसके दो आधार हैं—रक्त और विवाह। जन्म से और विवाह से जो कुटुम्ब बनता है, वह स्वायत्त नहीं है और जो स्वायत्त नहीं है उसमें स्वतन्त्रता नहीं है। जो संस्थाएँ स्वायत्त नहीं होतीं वे एक होकर सर्वाधिकार में परिणत हो जाती हैं। जो संस्थाएँ स्वयं-निर्मित नहीं हैं लोगों में से पैदा नहीं हुईं, वे स्वायत्त-संस्थाएँ नहीं हैं। ऊपर से लादी हुई होती हैं। आपने संस्था बनायी और लोगों पर लादी। फिर कहा हमारा अधिकार आपको देते हैं (Delegation of Power)। हमारे यहाँ पंचायत राज बना है। उधर अयूब खाँ भी कहते थे कि पंचायतों को सत्ता देंगे। युगोस्लाविया में डिक्टेटरशिप है, लेकिन कम्यून के हाथों में सत्ता सौंपने की बात वे सोचते हैं। लेकिन यह सब दी हुई सत्ता है ऊपर से पावर डेलिगेट किया है। जिनको अनुभव नहीं है जिनमें सत्ता के लिए स्वयंप्रेरणा जाग्रत नहीं है, वे उस सत्ता का उपयोग नहीं कर सकते। तो क्या सत्ता न सौंपी जाय?—नहीं सौंपनी चाहिए। अधिकार स्वायत्त होना चाहिए। आज दुनिया के समाजवाद में दो पक्ष हो गये हैं। एक पक्ष है, लोकतान्त्रिक समाजवाद। इस पक्ष में ब्रिटिश लेबर पार्टी है अमेरिका की सोशलिस्ट पार्टी है, फ्रांस और दूसरे देशों के समाजवादियों के पक्ष हैं। एक पक्ष का कहना है कि जितनी भी संस्थाएँ हैं सब लोकायत्त होनी चाहिए। लोकायत्त से मतलब है, नागरिकों की सामाजिक भावना से उत्पन्न संस्थाएँ होनी चाहिए। वे स्वयंप्रेरित होंगी स्वायत्त होंगी। अब वे कहते हैं कि सत्तावाद में यह नहीं होगा। हम सत्तावाद नहीं चाहते हैं। लोकतन्त्र में हम लोक-सत्ता लाना चाहते हैं। लोक-सत्ता की अन्तिम शक्ति क्या है? लोक-शक्ति उसका अन्तिम अधिष्ठान होगा। इसलिए हमारा यह विचार है कि लोक-तन्त्र में लोगों की शक्ति पैदा होनी चाहिए।

दबाव और स्वेच्छा

हमारे देश में भी दो पक्ष हैं। एक पक्ष कम्युनिस्टों का है। उसमें भी कुछ भेद है—एक नंबूदीपाद का, दूसरा गोपालन का। इस भेद का कारण है—समाजवाद की केंद्रीय विभूति कौन होगा? मजदूर या किसान? उन भेदों को हम छोड़ दें। इस वक्त जिन दो पक्षों का उल्लेख कर रहा हूँ वह है साम्यवाद और समाजवाद। जयप्रकाशजी, अशोक मेहता आदि लोगों के समाजवाद में जिसे लोकतांत्रिक समाजवाद कहते हैं, और साम्यवादियों के समाजवाद में जिसे वैज्ञानिक समाजवाद कहते हैं—मुख्य अन्तर क्या है? वह है दबाव और स्वेच्छा। एक तरफ सत्ता का प्रयोग अधिक है और दूसरी तरफ लोगों की स्वयंप्रेरणा है। एक जगह लोक-प्रेरणा पर जोर है, लोक-अभिक्रम की अपेक्षा है, दूसरी जगह राज्य-प्रेरणा पर जोर है, दबाव की नीति है। थोड़ी-थोड़ी जबरदस्ती दोनों में है। लेकिन एक तरफ दबाव ही दबाव होगा और दूसरी तरफ कम-से-कम दबाव होगा। दबाव में जबरदस्ती कम होगी, लोगों की रुचि बढ़ाने की कोशिश होगी। तो एक तरफ दबाव और जबरदस्ती होगी और दूसरी तरफ रुचि बढ़ाना और दबाव होगा। सत्ता के उपयोग में दबाव अवश्य है। लेकिन अधिक-से-अधिक कोशिश इस बात की है कि दबाव कम-से-कम हो। सत्ता के और कानून के प्रयोग में भी पुलिस का उपयोग कम-से-कम हो। यह दोनों में अंतर है। दबाव में बल-प्रयोग है, लेकिन वह कानून का है। लेकिन कानून के पीछे अगर पुलिस का डण्डा हो तो वह डंडे का दबाव होगा, वह दबाव जबरदस्ती कहलायेगा।

तो क्या नैतिक आंदोलन में कोई दबाव नहीं आयेगा? क्या नैतिक आंदोलन प्रभावित नहीं करता? उस प्रभाव में क्या कोई दबाव नहीं है? प्रभाव में भी थोड़ा दबाव होता है। लेकिन इस दबाव में बड़ा अंतर है। दबाव प्रभाव भेद नहीं, प्रकार भेद। मात्रा का ही अंतर नहीं, स्वरूप का, गुण का अंतर है।

स्वायत्त चारित्र्य

पिछली बार हेरल्ड मैकमिलन निर्वाचित हुए और इंग्लैंड में उनकी सरकार कायम हुई। लेबर पार्टी क्यों नहीं आयी? क्या इंग्लैंड संपत्तिवादी और पूँजीवादी बन गया? वह पूँजीवादी राष्ट्र नहीं है। तो फिर क्या हुआ? समाजवाद के नाम-मात्र राज्य-स्वामित्व आता है और सुखी मनुष्य उसे नहीं चाहता है। राज्य-स्वामित्व दुःखी मनुष्य चाहता है। जो विपन्न है, विपत्ति में है वह चाहता है कि राज्य का स्वामित्व हो। पब्लिक बस की आवश्यकता उसको है जिसकी अपनी मोटर नहीं है। वह चाहता है कि सार्वजनिक सुविधा किसी व्यक्ति के किसी संस्था के या राज्य के हाथ में न हो। प्राइवेट कम्पनियों की बस में और सरकारी बस में दोनों जगह पक्षपात है, भ्रष्टाचार है फिर भी इनमें से चुनना हो तो सरकारी बस ही अच्छी समझी जायगी। क्योंकि प्राइवेट कम्पनी का कोई ठिकाना नहीं है। इस प्रकार की बात उस देश का मनुष्य कहता है जिसमें सार्वजनिक चारित्र्य की कमी है। विपत्ति की अवस्था चारित्र्य को क्षीण कर देती है। हमारा देश किसी जमाने में आध्यात्मिक रहा होगा इसका चारित्र्य भी उच्च रहा होगा। आज यहाँ सार्वजनिक चारित्र्य दूसरे किसी देश की अपेक्षा बहुत कम है। सार्वजनिक चारित्र्य की दृष्टि से लोक-चारित्र्य की दृष्टि से हमारा समाज बहुत पीछे रह गया है। हो सकता है, सबसे पीछे हो। जो सबसे पीछे हो जाता है, उसका एक ही अभिमान रह जाता है कि हमारे बाप-दादा चारित्र्यवान् थे। उसके लिए इतिहास बड़े गौरव का विषय बन जाता है। उसके पास अपने पुरुषार्थ से उपार्जित चारित्र्य नहीं है। जहाँ भूख है, बेकारी है, गरीबी है, वहाँ स्वायत्त चारित्र्य नहीं होता है। वहाँ का मनुष्य हमेशा राज्यावलंबी बन जाता है। इसलिए ऐसे देशों में जो लोक-कल्याणवाद होता है वह डिक्टेटरशिप के नजदीक होता है। जिस देश में दारिद्र्य है, दीनता है, ऐसे देशों में सत्तापरायण राज्य हमेशा अधिनायकत्व और तानाशाही की तरफ

जाता है। यहाँ कांग्रेस की डिक्टेटरशिप है। यह सही हो या गलत, लेकिन एक बात सही है कि यहाँ का पढ़ा-लिखा आदमी भी कहेगा कि कम्युनिज्म चाहिए। किसलिए? इसलिए कि हममें पुरुषार्थ की कमी है। इसके लिए राज्य कल्पवृक्ष है, कामधेनु है। वह बगैर पुरुषार्थ के भी सब कुछ देगा। वह डण्डा मारेगा तो भी खाने को तो दे ही देगा। एक हाथ में भी रखे और दूसरे हाथ में डण्डा रखे तो भी कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता है। विपत्ति के कारण पुरुषार्थ क्षीण हो गया है। यूरोप और अमेरिका में पारस पत्थर की जरूरत नहीं है। वह सोना भले बनाता हो पर खाना नहीं दे सकता, पानी नहीं दे सकता। सोना तो अमेरिका और इंग्लैंड के पास बहुत है। रुपया वहाँ नहीं है। रुपया है ईरान में और अरब में, क्योंकि वहाँ तेल है। आज का अर्थशास्त्र पैसे का, द्रव्य का अर्थशास्त्र नहीं। वस्तु का अर्थशास्त्र है। यह भारतवासी मनुष्य अब तक समझा नहीं है, इसलिए व्याख्यान देता है कि 'हमारे देश में सोने का धुआँ निकलता था, अब नहीं है।' सोने का धुआँ निकलता रहा होगा लेकिन उसमें सुगंध तो नहीं आती थी? जहाँ वस्तु का महत्त्व है, अर्थशास्त्र है वहाँ वस्तु सुलभ है। जहाँ साधारण मनुष्य को वस्तु सुलभ है वहाँ वह राज्य-स्वामित्व नहीं चाहता। क्योंकि जहाँ राज्य-स्वामित्व होता है वहाँ नागरिक सरकार का नौकर बनता है। समाजवाद इस चाकरी को मिटाना चाहता है। लेकिन होता क्या है? पूंजीवादी चाकरी की जगह समाजवादी चाकरी स्थापित कर देता है [illegible] व्यक्तिगत चाकरी के स्थान पर राज्य की चाकरी कायम कर [illegible] राज्य के नागरिक गुलाम बन जाते हैं।

भूख में पुरुषार्थ कहाँ

इस मनुष्य [illegible] समझ नहीं सकता, क्योंकि उसके पेट में आग [illegible] लग गई है। मुझे

आदमी इन बातों को नहीं समझ सकते। साम्यवाद का बड़ा आकर्षण इसीलिए है। और इस समस्या का समाधान दुनिया की किसी पंचवर्षीय योजना से या हथियारों से नहीं होनेवाला है। युद्धशास्त्र और यन्त्रशास्त्र इसको हल नहीं कर सकते। इसलिए जिस प्रकार की क्रांति हम चाहते हैं उसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि लोकतंत्र के साथ-साथ स्वायत्तता आवे। लोग अक्सर पूछते हैं कि विनोबा का कार्यक्रम सफल क्यों नहीं हो रहा है? सफल इसलिए नहीं हो रहा है कि भूखा आदमी कहता है कि 'तुम चाहे जो करो लेकिन मुझे खिलाओ।' भूख के कारण वह गुलाम बनने को तैयार है। जो उसको खिला दे, वही उसका देवता है। भूख और विपत्ति के कारण श्रम करने की प्रेरणा क्षीण हो जाती है। पुरुषार्थ शून्य हो जाता है। ऐसे मनुष्यों में पुरुषार्थ जाग्रत करने की आवश्यकता है।

मध्यम वर्ग

गांधी ने कहा था कि मैं क्या करूं? जनता निर्जीव और निर्वीर्य हो गयी है, वह मेरी अहिंसा समझ नहीं पाती। उनके पास शस्त्र नहीं थे। कोई दूसरा रास्ता नहीं था। मैंने एक रास्ता दिखा दिया। कुछ देर के लिए उसे स्वीकार कर लिया। लेकिन वे पुरुषार्थी नहीं थे निर्वीर्य थे। इसलिए उनकी अहिंसा कमजोरों की अहिंसा साबित हुई! अब विनोबा कहते हैं कि मैंने शस्त्र और निःशस्त्र दोनों को अहिंसा का संदेश देकर अत्यन्त पुरुषार्थ जाग्रत कर दिया। आज हम देखते हैं कि इस देश में अंग्रेज एक मध्यम वर्ग पैदा कर गये और दूसरा मध्यम वर्ग गांधी पैदा कर गये। एक बाबू वर्ग है जो अंग्रेजों ने पैदा किया और दूसरा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का वर्ग है जिसे गांधीजी ने पैदा किया। यह वर्ग सत्ता के कारण भ्रष्ट हो गया यह बात प्रकट है। सत्ता के आते ही उनकी नीयत खराब हो गयी। लेकिन इस देश में यदि कोई पुरुषार्थी मध्यम वर्ग है, तो वह गांधीजी ने पैदा किया। आज भी विनोबा के भूदान में जो

कार्यकर्ता हैं वे क्या चाहते हैं ? उनको क्या मिल रहा है ? केवल पैसे की दृष्टि से ही नहीं प्रयत्न और सफलता की दृष्टि से भी उनको क्या मिल रहा है ?—कुछ नहीं। श्रेय भी नहीं मिल रहा है। फिर भी लगभग पाँच हजार कार्यकर्ता उसमें लगे हैं।

असफलता वस्तुओं में नहीं मनुष्यों में

सेवाग्राम में विनोबा नहीं था सिर्फ गांधी का नाम बचा है। वहाँ कहा गया कि जो आना चाहें आयें तो तीन हजार कार्यकर्ता पहुँचे। और जो नहीं पहुँचे उनकी संख्या इससे ज्यादा है। ये लोग कहाँ से आये ? कहा जाता है कि गांधी भी असफल हुआ और विनोबा भी असफल हुआ फिर भी ये लोग कहाँ से आये ? उनकी असफलता वस्तुओं में नहीं है संस्थाओं में नहीं है मनुष्यों में है। उनकी देन मनुष्यों की है। आप भी मानवीय परिवार ही बनाना चाहते हैं। फिर बाद में विनोबा ने कहा कि मेरा कार्यकर्ता तंत्र-मुक्त भी है और निधि-मुक्त भी। उसे पैसे *का भी बन्धन नहीं संस्था का भी बन्धन नहीं। वे कहते हैं कि कम-से* कम ये लोग मुझे अपना समझें मैं सबको समझता हूँ और जो मुट्ठीभर आदमी आये हैं वे भी मुझे अपना समझते हैं।

सफलता के पैमाने

क्रांति में सफलता के पैमाने अलग होते हैं। नित्य आराम में रहने-वाले सुखाधीन समाज के पैमाने और होते हैं। विनोबा निराश नहीं हैं। वे कहते हैं कि 'मैंने जो शुरू किया उसमें कभी सोचा नहीं था कि इतने आदमी आ जायेंगे। मैंने तो सोचा था कि कोई भी नहीं आयेगा। फिर भी इतने आ गये। जो नहीं आये उनके लिए क्या मैं रोऊँ ? जो आये हैं उनके लिए मैं खुश हूँ ! वे स्वयं-प्रेरणा जाग्रत करना चाहते हैं। अपहरण (Expropriation) से स्वयं-प्रेरणा जाग्रत नहीं होती। राज्य संपत्ति का हरण कर लेता है। कानून से और दबाव से

छीन लेता है। पुरुषार्थ भी छीन लेता है। संपत्ति के साथ मनुष्य का पुरुषार्थ और पौरुष भी चला जाता है। विनोबा कहता है कि अगर लोकतंत्र की बुनियादें ही जाती रहीं और मैं लोगों को पुरुषार्थहीन करता चला जाऊँ तो ये गुणहीन हो जायेंगे। स्वयं प्रेरणा (Voluntarism) हमेशा के लिए नष्ट हो जायगी। ऐसे व्यक्ति बहुत कम ही मिलेंगे। पैंतालीस करोड़ की आबादी में से कितने करोड़ जेल में गये होंगे? क्या एक करोड़ भी गये होंगे? सभाओं और जुलूसों में जानेवालों की संख्या कितनी थी? सारे आंदोलन में बहुत थोड़ा सा हिस्सा शामिल हुआ और स्वराज्य आ गया। इसी तरह स्वयंप्रेरणा से संपत्ति-विसर्जन का परिमाण बहुत कम है लेकिन उसमें से स्वयंप्रेरणा (Voluntarism) आयेगी। सबकी प्रतिज्ञा एक ही है—कोआपरेटिव कामनवेल्थ कोआपरेटिव सोशलिज्म। लेकिन नंबूदीपाद के कोआपरेटिव तरीके से राजाजी और रंगाजी डरते हैं। वे कहते हैं कि उसमें से कम्यु निज्म आयेगा। कोई न प्रजा-समाजवादी पक्ष कहता है कि सहयोग से स्वयंप्रेरणा जायेगी। सहयोग में दबाव आता है, तो वह कम्युनिज्म (Collectivism) बन जाता है। इसने सिद्ध कर दिया है कि कलेक्टिविज्म व्यावहारिक नहीं है। जो स्वयंप्रेरित सहयोग होगा वही व्यावहारिक होगा। अब विरोध यह है कि स्वयं-प्रेरणा में दबाव कितना हो। तो कहते हैं कि उतना नहीं होना चाहिए, जितना चीन में है। चीन में सारा दबाव ही दबाव है। वहाँ ममता का अभिक्रम बहुत कम है। इस-लिए यहाँ के कम्यून को लोग खतरा मानते हैं। यहाँ से जो लोग चीन हो आये हैं उनकी दो रिपोर्टें हैं। भारत के पाटिल कहते हैं कि चीन में दबाव और जबरदस्ती तो है लेकिन उतना तो चाहिए। दूसरे लोग कहते हैं कि उतना दबाव और उतनी जबरदस्ती यहाँ आ जाय तो यहाँ मनुष्यता खतम हो जाय। जीवन [illegible] हो जाय।

हम एक कॉलेज में गये थे। एक लड़की से मिलना था। पूछा कि

वह कहाँ है, तो जवाब मिला कि इस नाम की लड़कियाँ तो यहाँ बहुत हैं। इसलिए आप उसका नंबर बतलाइये।

मानवीय सम्पर्क की पवित्रता

अर्थात् हम आदमी का नंबर जानते हैं लेकिन मनुष्य को नहीं पहचानते। यानी आप दोनों में मानवीय संपर्क नहीं है। एक पक्ष कहता है कि मनुष्य का संपर्क और संसर्ग छूत की बीमारी है, मनुष्य को भ्रष्ट करनेवाली है। इसके विपरीत गांधी कहता है कि 'मनुष्य का संपर्क और संसर्ग मनुष्य को पवित्र करता है।' फ्लोरेन्स नाइटिंगेल, लूसिया बाड, अल्बर्ट स्वाइत्ज़र आदि नाम आपने सुने होंगे। दुनिया में इनके नाम क्या हैं? इन्होंने कुष्ठरोगियों का भी स्पर्श पवित्र माना। पिछले दिनों अलमन को फाँसी हुई तो अल्बर्ट स्वाइत्ज़र कहता है कि यह दुष्कृत्य हुआ है। क्योंकि उसका नारा है 'जीवन प्रतिष्ठित है।' वह कहता है कि मनुष्य का धर्म और मनुष्य का अध्यात्म जीवन का आदर करने में है। प्राणिमात्र पवित्र है। यह स्नेह की प्रेरणा है। यह बात वह व्यक्ति बोल रहा है जो दुनिया में साधारण मनुष्य के साथ अपनी आत्मीयता का अनुभव करनेवाले साधारण मनुष्यों का प्रतीकरूप है। इस प्रकार की स्नेह रखने की भावना आवश्यक है। इसमें असफल होना भी एक

सकेंगे। तो इस तरह दो संस्थाएँ अलग-अलग हैं। एक है पार्लियामेंट के सदस्य अपने चुनाव-क्षेत्र के लिए जिम्मेवार हैं और एक्जिक्यूटिव जिम्मेवार है शासन के लिए। और शासन जिम्मेवार है जनता के लिए। यह कुटुम्ब कैसा है? मैं जिम्मेवार हूँ अपने पड़ोसी के लिए और पड़ोसी जिम्मेवार है मेरे लिए और दोनों मिलकर जिम्मेवार हैं पड़ोस के लिए और पड़ोस जिम्मेवार है परिवार के लिए।

जब जयप्रकाशजी ने कहा कि नयी राज्यनीति (New Polity) बननी चाहिए तो लोग कहते हैं कि यह असंभव है। पूछते हैं कि आप कभी राज्यशास्त्र के विद्यार्थी थे? तो वे कहते हैं कि नहीं था इसीलिए बिना डरे आप लोगों के सामने रख रहा हूँ। जो राज्यशास्त्र के विद्यार्थी हैं वे किताब के बाहर का कुछ भी नहीं जानते। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी अर्थशास्त्र की किताबों के बाहर का कुछ नहीं जानते इसलिए बाहर के बारे में कुछ कह भी नहीं सकते। गांधी तो अर्थशास्त्री नहीं था इसीलिए बाहर की सभी चीजों के बारे में कह सकता था। वह राजविज्ञान की जगह लोकविज्ञान की भाषा कहता है। ○

८-२-१ (मालः)

*हमने यह देखा कि स्वतंत्रता का अर्थ दायित्व है। मनुष्य अपनी जिम्मे*दारी जितनी-जितनी दूसरों पर सौंपता है, उतनी-उतनी अपनी स्वतन्त्रता भी दूसरों पर सौंपता है। उत्तरदायी शासन के बजाय हम उत्तरदायी *समाज-व्यवस्था बनाना चाहते हैं। उसमें हरएक सबके लिए जिम्मेदार है।* और सब हरएक के लिए भी जिम्मेदार हैं। इसे हम उत्तरदायी समाज कहते हैं। और असल में यही स्वतंत्र समाज है। जिस समाज में मूलभूत *स्वतंत्रता है, वह स्वतंत्रता समाजान्तर-स्वतंत्रता है। समाज में इस प्रकार* की स्वतंत्रता चरितार्थ हो सकती है, इस दृष्टि से हमने अब तक समाज रचना का विवेचन किया। हमारी अर्थ-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था आदि सबकी बुनियाद *इस सिद्धान्त पर यानी जिम्मेदारी के* उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर रखी जाती है। इस सम्बन्ध को हम कौटुम्बिक सम्बन्ध कहते हैं। व्यवस्था की बुनियाद संस्था या संगठन के सम्बन्धों के बजाय कौटुम्बिक सम्बन्धों पर रखना चाहते हैं। तो हमारा कदम विश्व-समुदाय की तरफ नहीं बढ़ेगा, मानवीय कुटुम्ब की तरफ बढ़ेगा। मानवीय परिवार और विश्व-कुटुम्ब की तरफ ले जानेवाली व्यवस्था की रचना अलग तरह की होगी। इसमें प्रेरणा क्या होगी, यह हम कह चुके हैं। वह होगी सामाजिक प्रेरणा। मनुष्य आवश्यकता से आविष्कार करता है। लेकिन सामाजिक प्रेरणाएँ हमेशा आवश्यकता से नहीं आतीं। मनुष्य के मन में जब आकांक्षा का बोध पैदा होता है, तब उसमें से आविष्कार का प्रारम्भ होता है। यानी लोगों के भीतर से आयी हुई प्रेरणा पर नये समाज की बुनियाद रखनी होती है।

लोक-प्रेरित या लोक-निमर ?

ब्रिटिश पार्लियामेंटरी संस्था के बारे में यह कहा जाता है कि लोगों की प्रकृति का यह एक परिणाम है। ब्रिटिश लोगों की एक विशिष्ट प्रकृति और प्रवृत्ति है उसमें से अपने-आप यह विकसित हुई है। इसलिए उनके पास लिखित संविधान नहीं है। जो सारे संसदों की जननी कहलाती है उसका कोई लिखित संविधान नहीं है। यह लोकप्रेरित संस्था कहलाती है। इसीलिए इंग्लैण्ड में जितनी स्वयंप्रेरित संस्थाएँ हैं उतनी दुनिया में और किसी देश में नहीं है। दूसरे देशों में जो संस्थाएँ हैं उनमें औपचारिक संस्थाएँ बहुत ज्यादा हैं लोकप्रेरित बहुत कम। जो लोकप्रेरित होती है अंत में वह लोकनिभर होती है। लोकनिभर से क्या तात्पर्य है ? सरकार को जो कर दिया जाता है यद्यपि वह भी लोग ही देते हैं, लेकिन उसे लोग स्वेच्छा से नहीं देते हैं आवश्यकता के कारण देते हैं। अब ध्यान में आयेगा कि आवश्यकता में और प्रयोग में क्या फर्क है। कर और चंदा दोनों अलग-अलग चीजें हैं, जिनको हर मनुष्य टालना चाहता है। कर चन्दे से ज्यादा अप्रिय रहा है। इसलिए कर से और चन्दे से स्वयंप्रेरणा नहीं आती। तब लोकप्रेरणा के लिए दूसरे साधनों की आवश्यकता होती है।

दिशा सही हो

इसलिए अब विनोबा सर्वोदय-पात्र की बात कहते हैं। वे कहते हैं कि अगर मार्गदर्शक छोड़नी हो तो वे अपनी मर्जी से छोड़ें हम केवल समझायें। थोड़े ही लोग छोड़ें तो भी हर्ज नहीं लेकिन वह स्वयंप्रेरणा से हो। जिस देश में स्वयंप्रेरणा खतम हो गयी है उस देश में सार्वजनिक कार्य के लिए स्वयंप्रेरणा जाग्रत करने की आवश्यकता आ जाती है। सफलता और असफलता परिस्थिति और सामर्थ्य पर निर्भर है। सफलता में भले देर हो लेकिन वह ठीक दिशा में होनी चाहिए। सही दिशा में चलकर विफल होना अच्छा है, गलत दिशा में चलकर सफल होना पतन है।

जो समझेगा वही समझा सकेगा

दोनों में फर्क है। उचित दिशा में चलकर असफलता आती है तो भी उन्नति का लक्षण है। अगर लोगों की समझ में आपका विश्वास न हो तो आप उन्हें समझा नहीं सकते। इसे मानवीय स्वभाव में श्रद्धा कहते हैं। यदि कोई सोचता हो कि समझने में मनुष्य असमर्थ है तो मानना होगा कि वह मनुष्य में विश्वास नहीं करता है। यह मानना चाहिए कि हर मनुष्य समझ सकता है। जो यह नहीं मानता वह समझा नहीं सकता। यह हृदय-परिवर्तन की बात है, किसी-न-किसी तरह अपने सम्प्रदाय में शामिल कर लेने की नहीं। हृदय-परिवर्तन के लिए दो साधन हैं। एक है हमारी अपनी समझने की तैयारी। जो स्वयं समझने को तैयार हो वही दूसरे को समझा सकता है। नहीं तो वह समझाने का अधिकारी नहीं बन सकता। कार्यकर्ता अक्सर शिकायत करते हैं कि 'हमने एक बार, दो बार, तीन बार समझाया फिर भी लोग समझते नहीं हैं।" किसीने आपको भी तो समझाया होगा?—हाँ लेकिन वह मैं नहीं समझ सका। जो समझ नहीं सकता वह समझाने का भी अधिकारी नहीं है। यह सत्याग्रह की बुनियाद है। सत्याग्रह की अंतिम अवस्था तक प्रतिपक्षी की बात समझने के लिए सत्याग्रही की तैयारी रहनी चाहिए। जिस अवस्था में प्रतिपक्षी की बात समझ में आ गयी उसी अवस्था में उसी क्षण सत्याग्रह बंद हो जाता है। मैं उनको समझाने के लिए सत्याग्रह कर रहा था वह भी मुझे समझाने की कोशिश कर रहा था। मेरी समझ में उसकी बात आ गयी इसलिए मेरा सत्याग्रह समाप्त हो गया।

प्रेम और श्रद्धा

इसलिए सत्याग्रह में सफलता होती है। जय या पराजय नहीं। न किसीकी जय न किसीकी पराजय। समझ में आ जाना जय-पराजय नहीं है। मुझे बैंगलोर जाना है, लेकिन जा रहा हूँ मागडी की तरफ। रास्ते

में एक भाई पूछता है, आप कहाँ जा रहे हैं ? मैं कहूँगा बँगलोर जा रहा हूँ। वह कहता है कि यह रास्ता मामड़ी का है, आप उल्टे रास्ते जा रहे हैं। तो मैं कहता हूँ तुम क्या कह रहे हो मुझे दिशाओं का ज्ञान है। और मैं जानता हूँ कि बँगलोर पूर्व दिशा की तरफ है और मैं उसी दिशा की तरफ जा रहा हूँ। फिर भी वह आदमी मुझे समझाने की कोशिश करता है। लेकिन मैं मानता ही नहीं। इतने में मैं सूरज की तरफ देखता हूँ, तब समझ में आया कि उसकी बात सही है। मैं गलत रास्ते जा रहा हूँ। तो क्या वो आदमी मुझे सही रास्ता बतला रहा था वह जीता और मैं हारा ? मैं बँगलोर जाना चाहता था और बँगलोर की तरफ ही मुड़ गया। तो कौन जीता ? दोनों जीत गये। तो हृदय-परिवर्तन के लिए दो चीजों की आवश्यकता है, श्रद्धा और प्रेम। इतना प्रेम हो कि मैं समझाना चाहता हूँ और इतनी श्रद्धा हो कि मैं समझना चाहता हूँ। और एक-दूसरे पर विश्वास होना चाहिए। वह आदमी यह कहकर जा सकता था कि 'ठीक है, तुम गलत रास्ते से ही जाओ मामड़ी पहुँचने पर पछताओगे !" लेकिन वह जाना नहीं चाहता क्योंकि उसके दिल में यह स्पन्दन है स्नेह है कि वह नहीं चाहता कि मैं गलत रास्ते पर जाऊँ ? वह मुझे बार-बार समझाने की कोशिश करता है। यह अभिक्रम कहलाता है। सामाजिक प्रेरणा मानवीय प्रेरणा है और मानवीय प्रेरणा मैत्री की प्रेरणा है।

शक्ति और प्रेम

विलियम पेन यूरोप में व्यक्तिगत अहिंसा का आचरण करनेवाले एक महापुरुष थे। जॉर्ज फॉक्स के बाद विलियम पेन हुए, जिनके नाम से अमेरिका में एक प्रदेश का नाम पेनसिल्वानिया रखा गया है। उनके जीवन का एक सूत्र था शक्ति से आप शासन कर सकते हैं लेकिन प्रेम से आप मस्त करते हैं। दूसरे को अपने पास लाने का तरीका प्रेम है और दूसरे को वश में करने का तरीका शक्ति है। सत्ता आप प्राप्त कर सकते हैं

लेकिन प्रेम जीतता है। प्रेम से हम दूसरे पर प्रभुत्व नहीं करते अपने में उसमें मिलाते हैं Win करते हैं। उसे मनाकर अपनी तरफ मिला लिया। आज युद्ध का अन्त करने की समस्या है, उसकी जड़ मनुष्य के इस दोष में है कि उसकी मानवीय भूमिका और उसकी अधिकार-भूमिका (Official capacity) के बीच अन्तर पड़ गया। एक घर में माँ की नाक की नथ खो गयी। छोटा लड़का खेल रहा था। उसे मिल गयी। उसने सोचा कि यह कोई बटन है और अपनी जेब में डाल लिया। रात को नौ बजे ही सारे बच्चों को माँ अक्सर सुला दिया करती थी। उस दिन भी सुला दिया फिर रात के दस बजे शोर मचा रही थी कि नथ खो गयी है, मिल नहीं रही है। लड़का सोया नहीं था। लेटे-लेटे सोच रहा था कि माँ जिसे खोज रही है, वह नहीं होगी जो मेरी जेब में है। फिर भी कुछ देर तक घुनता रहा और बाद में धीरे से बोलने लगा कि 'क्या करूँ? मैं तो सो रहा हूँ नहीं तो मैं बतला सकता हूँ। सोता है तो कहेगा कैसे? यानी वह अविकृत रूप से सोया हुआ है असल में सोया नहीं है। यदि बोलेगा तो अवैध हो जायगा। इस तरह मनुष्य के औपचारिक और वास्तविक सम्बन्धों में एक विरोध पैदा हो गया है और इसीलिए मनुष्य-मनुष्य के बीच हार्दिकता नहीं रही है। जहाँ हार्दिकता नहीं है, वहाँ हृदय-परिवर्तन की गुंजाइश नहीं है। एक की बुद्धि का दूसरे की बुद्धि के साथ स्पर्श नहीं है। मेरी बुद्धि उसकी बुद्धि को धोखा देने में लगी है और मुझे धोखा देने में उसकी बुद्धि लगी हुई है। दोनों बुद्धियों में संघर्ष है तो फिर एक-दूसरे को समझाने की कोशिश नहीं रहेगी। परास्त करने की कोशिश रहेगी। इसी प्रकार बुद्धि और हृदय का भी एक-दूसरे से स्पर्श नहीं होता है और इसी कारण एक विरोध (Contradiction) पैदा हुआ है।

बुनियाद हृदय में

लेकिन प्रतिज्ञा और संकल्प है कि एकीकरण की इच्छा या आकांक्षा

है निःशस्त्रीकरण की, लेकिन तैयारियाँ होती हैं शस्त्रीकरण की। तो क्या आदमी पागल हो रहा है? यू. एन. ओ. के चार्टर का पहला वाक्य इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालता है: चूँकि मनुष्य के मन में युद्ध पैठ गया है, इसलिए मनुष्य के मन में ही शान्ति की बुनियाद डालनी होगी। यह कोई मनोवैज्ञानिक का वाक्य नहीं है। शान्ति की बुनियादें मनुष्यों के हृदय में डालनी चाहिए। लेकिन किसके हृदय में? दूसरों के हृदय में। यह भी कहता है कि मनुष्यों के हृदय में शान्ति की बुनियाद डालनी चाहिए, वह भी यही बात कहता है। लेकिन मनुष्य कौन? हम दोनों को छोड़कर बाकी सब मनुष्यों के हृदय में। आप दोनों के हृदय में क्यों नहीं? इसलिए कि वेदान्त से रोटी नहीं मिलती है। दबाव और जबरदस्ती के द्वारा मनुष्यों की कृति पर नियन्त्रण किया जा सकता है, लेकिन मन पर नहीं।

चार्ल्स मार्गन नाम का एक उपन्यासकार है। अंग्रेजी साहित्य में इसे युगप्रवर्तक माना जाता है। इसकी एक किताब है—Liberties of The Mind मनुष्य का प्रभुत्व मनुष्य के चित्त पर भिन्न-भिन्न उपायों से स्थापित हुआ है? दूसरों के मन का नियन्त्रण करना आज की राजनीति में सबसे बड़ा साधन है। अब तक शरीर के नियन्त्रण से लोगों को सन्तोष था, लेकिन अब मन का नियन्त्रण करने की भी आवश्यकता हो गयी है। पंडित नम्बूद्रीपाद ने कहा कि जहाँ कांग्रेस राज्य करती है, वहाँ शिक्षण का नियन्त्रण कांग्रेसवाले करते हैं तो केरल में शिक्षण का नियन्त्रण हम करेंगे। तब मुरारजी भाई कहने लगे कि 'बात सही है, शिक्षण पर सरकार का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए।' यानी शिक्षण का नियन्त्रण करने से मनुष्य के मन का नियन्त्रण हो जाता है। अब यह सारे क्षेत्रों में चलता है। हमारे चाचा की आँख का ऑपरेशन हुआ तो डॉक्टर ने कहा कि हम एक गोली इनको खिलाना चाहते हैं। पूछा कि कौन-सी गोली है? तो कहा यह गोली खिलाने से रोगी आपके साथ सहयोग करेगा। अगर क्लोरो-

फार्म से मेडोल किया जा सकता है, तो चित्त को नियन्त्रित करने के लिए दवा क्यों नहीं मिलेगी ? अल्डुअस हक्सले ने एक बड़ी खोज निकाली है, जिसे खाने से समाधि लगने में मदद मिलती है। पहले के जमाने में सोमरस था, यह भी उसी तरह का है। अभी थोड़ा-सा नया बदली है। शराब व्यसन के रूप में समाज में प्रतिष्ठित नहीं हुई। वह इसलिए प्रतिष्ठित हुई कि मनुष्य को चिन्तामुक्त करने का साधन बन गयी। वह चित्त को संवेदनहीन बनाने का साधन मानी जाती है।

चित्त नियन्त्रण और स्वतन्त्रता

अल्बर्ट कामू एक प्रसिद्ध लेखक था। उसकी एक किताब है— Outsider इसको लेकर काफी सनसनी रही। उसमें लिखा है कि आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिए चित्त को थोड़े-से धक्के की जरूरत है। यहाँ तक तो राज्य-सत्ता पहुँच गयी है। डॉक्टर कहता है कि अब हमारे पास ऐसी दवा है, जिससे मन की शक्ति समाप्त हो जायगी और जो चाहे वह उससे कहलवा सकते हैं। यह चित्त-नियंत्रण आज की राजनीति का एक बहुत बड़ा साधन है। इस दिशा में राजनीति प्रगति कर रही है। यह वैज्ञानिक राजनीति है। पहले छल-प्रपंच की धोखेबाजी की राजनीति थी। सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ वह होता था जो धोखा देने में अधिक चतुर होता। अब धोखा देने की जरूरत नहीं है। तगड़े-से-तगड़े मनुष्य को भी अब मस्मेराइज (मुग्ध) कर सकते हैं। अब ऐसी दवाओं का साथ हो रहा है। आज वैज्ञानिक ऐसे शोध-कार्य में लगे हैं जिससे राजनीतिज्ञ और सत्ताधारी आकांक्षा रख रहे हैं कि मनुष्य के चित्त का भी हम नियन्त्रण कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में स्वतन्त्रता कहाँ है ?

अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर में चार मूलभूत स्वतन्त्रताओं का उल्लेख किया गया है। विचार की स्वतन्त्रता, जीवन की स्वतन्त्रता, अभाव से

मुक्ति और ४ भय से मुक्ति। अभाव की पूर्ति अमेरिका और इंग्लैंड में भी बहिक परिताप नहीं हुई। वहाँ के लोग पूरी तरह सम्पन्न नहीं हो गये हैं। भय-मुक्ति भी कहाँ? अमेरिका रूस से डरता है और रूस अमेरिका से। यदि मनुष्य मनुष्य की बुद्धि को भ्रम में डाल सकता है, मनुष्य मनुष्य के दिल या चेतना को सुला सकता है, तो फिर मनुष्य का मनुष्य से प्रेम कैसे होगा? इसीलिए चार्ल्स मायम ने अपनी पुस्तक में लिखा कि मनुष्य के चित्त की स्वतंत्रता अबाधित रहनी चाहिए मर्यादित रहनी चाहिए।

इन चारों बातों पर विचार करेंगे तो हमें गांधी और विनोबा का महत्त्व मालूम हो जायगा। इन दोनों को हम मनुष्य-समाज के उद्धारक क्यों मानते हैं? ये मनुष्य के सच्चे सखा क्यों हैं? इसलिए कि ये अमीर की भी मानसिक स्वतंत्रता का अपहरण नहीं करना चाहते किसीके भी चित्त का अपहरण नहीं करना चाहते। दूसरे की आत्मा का हनन करने वाला आत्मघातक है। लोग कहते हैं कि यह रास्ता लंबा है दूर का है। लेकिन कहा गया है कि यह रास्ता मनुष्यता का है। दूसरे सारे रास्ते मनुष्य के विनाश के हैं आत्मनाश के हैं। जितनी शांति-संस्थाएँ होती हैं सब नकली संस्थाएँ होती हैं। उनमें प्राण नहीं आता है। बर्ट्रेंड रसेल एच जी वेल्स और भी दूसरे बहुत हैं, जो युद्ध-विरोधी हैं। इनमें भी तीन प्रकार के लोग हैं—अहिंसक प्रतीकार में विश्वास करने वाले शांतिवादी और युद्ध-विरोधी। इन दिनों ये सब नजदीक आ रहे हैं। क्योंकि इसके बिना काम नहीं चलेगा। वहाँ साम्यिवादी लोग एक-दूसरे के नजदीक आ रहे हैं वहाँ समाजवादी लोग एक-दूसरे से दूर जा रहे हैं। उधर उनकी एकता बढ़ रही है और इधर इनका भेद बढ़ रहा है। अब इसकी मुश्किलें बढ़ रही हैं। विचार चलता है कि लीग ऑफ नेशन्स क्यों विफल हुआ। बर्ट्रेंड रसेल कहते हैं कि वह इसलिए विफल हुआ कि वह एक सरकार नहीं थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ (यू एन ओ)

भी तभी सफल हो सकेगा जब यह सरकार बने और उसकी सार्वभौमता तब सिद्ध होगी जब अमेरिका और रूस दोनों अपनी-अपनी सार्वभौमता छोड़ने को तैयार होंगे।

निष्प्राणता क्यों ?

सन् १९०८ में एक बहुत बड़ी पुस्तक प्रकाशित हुई जिसने संसार में खलबली मचा दी। उसको लेकर विचार-जगत में भारी प्रक्षोभ पैदा हुआ। पुस्तक का नाम था—The Great Illusion। लेखक हैं, नार्मन एंजल। लेखक ने कहा है कि शस्त्र-संरक्षण की कल्पना एक माया है। उसने दलीलों से वाद-विवाद नहीं किया है, वास्तविकता का विश्लेषण किया है। उसने एक बात यह भी कही है कि जर्मनी आज अपनी सेना नहीं छोड़ेगा इंग्लैंड भी नहीं छोड़ेगा। भले ही वे अपनी-अपनी सेनाएँ रखें लेकिन उन सेनाओं का उपयोग लीग ऑफ नेशन्स के द्वारा हो। आज अगर अमेरिका और रूस दोनों कहें कि हमारी सेना का उपयोग यूनो की आज्ञा से होगा तो सार्वभौमत्व के समर्पण में और इसमें क्या अंतर है? लेकिन यह करने के लिए दोनों तैयार नहीं हैं, इसलिए यूनो में वास्तविकता नहीं आयी है। आज यूनो क्यों निष्प्राण हो रहा है? इसलिए कि मनुष्य के चित्त में शांति की स्थापना नहीं की गयी है। पंचशील केवल कागज पर है। लोग निःशस्त्रीकरण का जप तो कर रहे हैं, लेकिन अपने मन में उसकी बुनियाद नहीं डाली है।

कुछ साल पहले इंग्लैण्ड के एक बड़े आदमी ने कहा था कि यहाँ जो राजत्व की परंपरा है उसका है यह एक नाटक है। यहाँ राजा तो किसी काम का नहीं है। लोगों का विश्वास था कि राजा कोई गलती नहीं कर सकता। लोग सोच रहे थे कि अगर राजा गलती नहीं कर सकता तो अच्छा काम करता होगा। उसके हाथ से गलती नहीं हो सकती इसका मतलब है यह था भी करेगा अच्छा ही करेगा। फिर लास्की ने 'Law

of Constitution नामक पुस्तक में उस वाक्य का मतलब किया कि राजा यदि गलती नहीं कर सकता तो वह सही काम भी कुछ नहीं करता। राजा कुछ भी करता नहीं है, उसके नाम पर सब कुछ किया जाता है। इसलिए उसने कहा कि यह राजत्व एक 'मोक पार्लियामेंट' है। संसद् का भारवाही टट्टू है। इस बात को लेकर बहुत हो-हल्ला मचा। मार्गों ने कहा कि 'यह व्यक्ति राजा के बारे में विचार कर रहा है, इसलिए इसे सजा होनी चाहिए।' उसने कहा था कि यह कामनवेल्थ एक झूठ है, भ्रम है। इसमें संपत्ति का संविभाग तो नहीं होता विचार भी सबका एक नहीं होता। तो फिर इस संस्था में एक ऍक्टोप्लाज्म है। शरीर में से एक अदृश्य द्रव्य निकलता है, जिसे मेस्मेरिज्म के लिए एक माध्यम —Medium—के रूप में काम में लेते हैं उसका नाम है ऍक्टोप्लाज्म। यह लेखक कहता है कि इन संस्थाओं में से यह ऍक्टोप्लाज्म निकलता है, उससे लोगों को एक प्रकार का भ्रम होता है।

शस्त्रास्त्रों की होड़

इन संस्थाओं में यदि वास्तविकता दाखिल करनी है तो क्या करना होगा? सभी लोग इसकी आवश्यकता समझने लगे हैं। उन लोगों में अत्यंत एक नाम मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ। द्वितीय महायुद्ध के बाद एक पुस्तक प्रकाशित हुई–The Arms Race शस्त्रास्त्रों की होड़। सन् १९५८ में फिलिप नोयेल बेकर ने यह लिखी। उसमें तो अभी-अभी तक की कई घटनाओं के बारे में लिखा है। सार प्रमाणों को लेकर वह सिद्ध करता है कि अब शस्त्रास्त्र-संरक्षण अव्यावहारिक हो गया है। वह यह नहीं कह रहा है कि शस्त्रास्त्र-संरक्षण अवांछनीय है। वह साधारण मनुष्यों की समझ में आनेवाली भाषा में तथ्यों और प्रश्नों का आधार लेकर लिखता है कि यह अव्यावहारिक है। सर जान काकक्रॉफ्ट जो ब्रिटेन के अणुशक्ति-आयोग का अध्यक्ष था, ने कहा है कि अब अणुशक्ति में जो प्रगति हुई है, उसके

कारण हमारी सभ्यता एक रात में ही भस्म की जा सकती है। यह तो ५६ साल पहले की बात है। अब तो एक रात की भी जरूरत नहीं रही है। ब्रिटिश सरकार ने उसे इसलिए नियुक्त किया था कि वह यह विचार करे कि अणुशक्ति के बारे में हमारे यहाँ क्या-क्या संभावनाएँ हैं। प्रोफेसर हैलोडोर माइसनहाइमर की विज्ञान सलाहकार कमेटी का अध्यक्ष था। उसने लिखा है कि 'अब तो मिलिटरी टेक्नीक और विज्ञान को जोड़ देने से दुर्बल लोगों को समाप्त करने की वैज्ञानिक पद्धति काम में लेना आसान हो गया है। मनुष्य का शरीर कोई पहाड़ नहीं है। वह हमें यह समझाना चाहता है कि ये सारे वैज्ञानिक आविष्कार सारी मिलिटरी टेक-नीक युद्ध-शस्त्र और विज्ञान सब किसलिए विकसित हुए हैं। ये सारे मनुष्यों को खतम करने के लिए हैं जो कि शरीर से कमजोर हैं। धरती पर हम सबको अब एक साथ जीने की समस्या का हल खोजना है। क्योंकि उसके बिना हम जिन्दा नहीं रह सकते।

एक और प्रोफेसर ओवेन हीमर का भी उल्लेख फिलिप नोयेल बेकर ने अपनी पुस्तक में किया है। इन सब लोगों के अवलोकन और अध्ययन का सार यही है कि समस्त सुरक्षा-व्यवस्था केवल आक्रमण के लिए ही है संरक्षण के लिए नहीं। मनुष्य के शरीर में आज जितनी बीमा-रियाँ हो सकती हैं उन सबके विरुद्ध विज्ञान ने लड़ाई छेड़ी है। और दूसरी तरफ दुश्मनों के पानी में हवा में बीमारियों के जीवाणु मिलाने का भी प्रयत्न चल रहा है। आरोग्य-शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र दोनों एक शास्त्र हैं जिनके कारण मनुष्य का मनुष्य से स्नेह पावन होनेवाला है। लेकिन इसमें खतरा यह है कि आज हम विष-वायुओं का प्रयोग कर रहे हैं आग लगानेवाले शस्त्र प्रयोग कर सके हैं। पुराने जमाने के युद्ध-शस्त्रों में बाणशास्त्र और आग्नेयास्त्र आदि का प्रयोग हम सुनते हैं। इसी प्रकार से इन शस्त्रों का विस्तृत विवरण The Arms R[illegible] पुस्तक में दिया है। और आखिर हम इस नतीजे पर आये हैं कि

वे सारे-के-सारे शस्त्र संरक्षण के लिए नहीं हैं। अब मनुष्य युद्ध में इस मंजिल तक पहुँच गया है, जहाँ युद्ध से संरक्षण नहीं रह गया है, केवल आक्रमण ही रह गया है। सभी राष्ट्र कहते हैं कि 'हमारी सेना संरक्षण के लिए है। उस विभाग का नाम है 'प्रतिरक्षा विभाग। डिफेन्स डिपार्टमेंट।

शान्ति-स्थापना के प्रयत्न

अब सारे राष्ट्र शांति-स्थापना के प्रयत्न कर रहे हैं। मैसूर के पास एलवाल नामक स्थान पर ग्रामदान-परिषद् हुई थी। उसके बाद सर्वोदय कार्यकर्ताओं के एक शिविर म मैंने इन प्रयत्नों का कुछ विश्लेषण किया था। वे सारे प्रयत्न शांति की दिशा म इतिहास में कहाँ से शुरू हुए और अब कहाँ तक पहुँचे हैं यह देखना चाहिए। इनम कुछ प्रयत्नों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। International Law पुस्तक में ह्यूगो ग्रोशस का नाम आता है। वह एक वकील था। उसीने पहले-पहल अन्तर्राष्ट्रीय कानून की बात कही। वह इस बात का समर्थक था कि एक ऐसा कानून हो जो सारे राष्ट्रों पर पारस्परिक व्यवहार के लिए लागू हो। उस समय तक राष्ट्रों के आपस के व्यवहार में कोई कानून नहीं था। युद्ध के लिए कानून जरूर थे यह अलग बात है। लेकिन राष्ट्रों के बीच में कोई समस्या हो तो उसको हल करने के लिए कोई कानून नहीं था। उसने १७वीं शताब्दी म 'On the Law of War And Peace नामक पुस्तक लिखी है। यहाँ मैं उन प्रयत्नों का उल्लेख कर रहा हूँ जो वैचारिक और बौद्धिक स्तर पर हुए।

स्वतंत्रता का समर्पण

दूसरी ओर व्यावहारिक स्तर पर भी प्रयत्न हुए। चतुर्थ हेनरी ने यह कोशिश की कि एक यूरोपियन फेडरेशन बनाया जाय। उस समय एक राजकुमार ने कुछ मजाक की बात कही थी। उसने सबको बुलाया

और कहा कि हैनरी ने जो सुझाव दिये हैं, वे सब बहुत ठीक हैं लेकिन इसमें एक ही कमी रह गयी है कि कोई राजकुमार उसे पसन्द नहीं करता। व्यावहारिक स्तर पर प्रयत्न बन्द हो गये तथा था उस वक्त की यह बात है। इसीके साथ-साथ एक कोशिश और हुई। इमैन्युअल काण्ट ने एक बात बड़ी जो समझने लायक है। उसने विचार करना शुरू किया कि पशु में और मनुष्य में क्या फर्क है। पशु जितना स्वतन्त्र है, मनुष्य उतना स्वतंत्र नहीं है। स्वतंत्रता-आन्दोलन के समय हमें एक कविता सिखायी गयी थी जिसका आशय था—ये पक्षी आकाश में स्वच्छन्द-विहार कर रहे हैं ये शेर और बाघ जंगल में उन्मुक्त विचरण कर रहे हैं। ये सब स्वेच्छा से घूमते-फिरते हैं, परन्तु हम तो बंधन में पड़े हुए हैं। हम पशु-पक्षी से भी गये-गुजरे हैं। इमैन्युअल काण्ट कहता है कि शेर भी स्वतंत्र नहीं है पक्षी भी स्वतंत्र नहीं है। दोनों को डर है। एक क्रूर है और दूसरा कायर है। स्वतंत्र तो क्रूर भी नहीं है, कायर भी नहीं है। क्रूरता वीरता नहीं है। डरपोकपन भी वीरता नहीं है। इसको उसने असभ्य स्वतंत्रता (Lawless Liberty) कहा। इसके स्थान पर विवेकयुक्त स्वतंत्रता होनी चाहिए। *यह नागरिक स्वतंत्रता कहलाती है। सभ्य स्वतंत्रता भी यही है।* सभ्य स्वतंत्रता कैसे आयी?—स्वतंत्रता के त्याग (Surrender of Freedom) से आयी। मैं दो चीजें समझ लेनी हैं।

स्वतन्त्रता का त्याग में और स्वतन्त्रता का त्याग करने में अन्तर है। स्वतन्त्रता के त्याग का हेतु है साथ रहने की इच्छा। यह इच्छा मनुष्य को स्वाभाविक और अदम्य है। मित्रता की आकांक्षा मनुष्य की मूल आकांक्षा है। इसके लिए वह अपनी स्वतन्त्रता का समर्पण करता है। उसमें से स्वतन्त्रता बढ़ती है। स्वतन्त्रता का सहयोग करने का अर्थ है सार्वभौमत्व का सहभाग और सार्वभौमत्व का सहयोग सार्वभौमत्व का संकलन (Pooling) है। यही संरक्षण का संकलन है। मैं अपनी स्वतन्त्रता का दूसरे की स्वतन्त्रता के साथ मिला देता हूँ तो यह परस्पर समर्पण है।

बड़े महत्त्व की चीज है। सारे देशों के कुल प्रतिनिधि लगभग नब्बे एक होंगे इसके लिए तो एक खास इमारत ही चाहिए। अब जिनेवा में एक स्वतंत्र इमारत ही बनायी जानी चाहिए। फिर इमारत का प्रश्न आया कि वह कैसे बने? सोचा कि इमारत भी गोल ही बननी चाहिए, ताकि कोई भी द्वार मुख्य द्वार न हो। कोई मुख्य फाटक नहीं कोई मुख्य स्थान नहीं इस तरह सारा-का-सारा गोल ही भवन बना। अब यह Supra-natural Organization भी नहीं बना लेकिन एक प्रयास बना।

यह अंतर्राष्ट्रीय संगठन की पृष्ठभूमि है। अब इसमें से युद्ध समाप्त करने का प्रयास किस दिशा में होना चाहिए और उसमें हमारी भूमिका क्या होगी इस पर विचार करना है।

१-५-६ (प्रावा)

दुनिया में हम जिस प्रकार रहना चाहते हैं और जिस प्रकार के जीवन का उपभोग करना चाहते हैं, उस प्रकार के जीवन के लिए साधारण मानव की विभूति किस प्रकार की होगी? साधारण मानव की दो भूमिकाएँ हैं जो परस्पर पोषक हैं और दोनों मिलकर एक भूमिका है। एक उसका व्यक्तित्व और दूसरी उसकी सामाजिकता। मनुष्य के व्यक्तित्व और उसकी सामाजिकता में विरोध नहीं है। दोनों एक-दूसरे के पोषक और पूरक हैं। नये विश्व का जो मानव होगा उसका आकार कैसा हो उसके व्यक्तित्व का आशय क्या हो इस दृष्टि से हमने यह विचार किया। ऐसे मनुष्यों का जो पारस्परिक संबंध होगा उससे सामाजिकता का विकास होगा। उस समाज का आशय क्या होगा? उसमें औपचारिक संबंधों की जगह हार्दिक संबंध होंगे। ऐसे मनुष्यों के बीच सारी प्रवृत्तियों और सामाजिक कार्यों की प्रेरणा स्नेह की होगी। स्नेह की प्रेरणा में त्याग तितिक्षा और बलिदान का भान नहीं होता है। तितिक्षा से मतलब है, मानसिक तथा शारीरिक कष्ट और दुःख सहन करने की शक्ति। मनुष्य अगर यह समझता है कि मैं कुछ कष्ट सहन कर रहा हूँ अपनी खुशी से विचार और विवेकपूर्वक सहन कर रहा हूँ तो उसमें दो प्रकार की भावनाएँ पैदा हो सकती हैं। एक है स्वयं धार्मिकत्व की (Self righteousness)। जब आदमी यह समझने लगता है कि मैंने दूसरों की अपेक्षा समाज का काम अधिक किया है, पुण्य-कार्य ज्यादा किया है, तो उसमें से एक सूक्ष्म प्रभुत्व की आकांक्षा पैदा होती है। इस अवस्था में त्याग तितिक्षा और बलिदान भी सत्ता के साधन बन जाते हैं। इसलिए प्राचीन ग्रंथों में हम पढ़ते हैं कि इंद्र-पद तपस्वियों को मिलता है।

नया द्विधाभाव

हम जिस मानवीय विभूति का विचार कर रहे हैं उसमें सामाजिक प्रवृत्ति और क्रिया की प्रेरणा स्नेह की होती है। स्नेह में त्याग तितिक्षा और बलिदान आदि भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। स्नेह में त्याग आदि तो हैं लेकिन उसका भान नहीं होता है। बच्चों के खेल में मेहनत है, थकावट है पसीना भी निकलता है लेकिन खेलनेवाला बच्चा कभी यह नहीं कहेगा कि मैं पसीने का खेल खेल रहा हूँ। आपके लिए परिश्रम करनेवाला कहेगा कि मैं आपके लिए पसीना बहा रहा हूँ। दूसरा कहेगा कि यह जो शरीर मैंने कमाया है, वह पसीना बहाकर कमाया है। लेकिन खेलनेवाला कभी यह नहीं कहेगा कि मैं पसीना बहा रहा हूँ। वह केवल खेल रहा है और पसीना पोंछता चला जाता है। उसे पसीने का भान नहीं होता क्योंकि खेल में उसकी रुचि है। इसका अर्थ यह कि प्रेरणा के लिए रुचि चाहिए। लेकिन रुचि किसके लिए हो? जिसके लिए आप काम रहे हैं उसमें यदि रुचि है, तो उसके उस काम में भी रुचि होगी। प्रेरणा की समस्या दुनिया में बहुत बड़ी समस्या है। हम अब इस मुकाम पर पहुँचे हैं कि साधारण मानवीय विभूति में भी उसकी हर क्रिया की प्रेरणा स्नेह की होनी चाहिए और जहाँ स्नेह होगा वहाँ रुचि पैदा होती है। स्नेहमूलक कृति मनोरंजक होती है। फिर मनोरंजन के लिए अलग आयोजन नहीं करना पड़ता है। Creation is production plus recreatio (उत्पादन और मनोरंजन मिलकर निर्माण होता है।) उत्पादन और संरंजन दोनों क्रियाएँ नजदीक चली आती हैं। आज हमारा उत्पादन का कार्यक्रम अलग है सांस्कृतिक कार्यक्रम अलग है। मनोरंजन में मनुष्य का प्रत्यक्ष हिस्सा अधिक करते जाते हैं लेकिन उत्पादन में कम करते जाते हैं। कहा जाता है कि उत्पादन में मनुष्य का उपयोग कम-से-कम हो और मनोरंजन में अधिक-से-अधिक। तो यह एक नया द्विधाभाव (Dichotomy) पैदा होता है।

पहले से धर्म अध्यात्म और व्यवहार का एक द्वैतवाद है ही अब उद्योग और संजीवन का दूसरा द्वैतवाद शुरू हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ कि उद्योग और उत्पादन समाज का एक विभाग बन गया और संस्कृति और मनोरंजन दूसरा विभाग बन गया। एक हमारी उत्पादक-प्रवृत्ति है, दूसरी सांस्कृतिक प्रवृत्ति है। इस तरह से मनुष्य का व्यक्तित्व छिन्न-विच्छिन्न हो गया एक अंतर्विरोध पैदा हो गया। यह विज्ञान का युग ही ऐसा है। इसमें मनुष्य की विभूति म बहुत-से अंतर्विरोध पैदा होंगे। आबर कोइस्लर न आज के युग का नाम रखा है—The age of pointed contradiction (समाज के अंतर्विरोधों का युग)। इसके कारण मनुष्य की विभूति मे समग्रता नहीं आ पाती है। जिस विभूति में समग्रता नहीं है उसम मानवीयता का विकास नहीं होता।

उत्पादन स्नेहमूलक हो

गांधी का विचार मनुष्य की समग्र विभूति का विचार है। उत्पादन के लिए अरुचि और मनोरंजन के लिए रुचि की यह स्थिति तब तक रहनेवाली है, जब तक उत्पादन स्नेहमूलक नहीं होगा। उत्पादन स्नेहमूलक होता है, तब उसमें रुचि पैदा होती है। बाजार से फूलों का एक गुच्छा आप खरीद लाये। बहुत अच्छा है। उसे मेज पर रख दिया। दूसरा भी एक गुच्छा फूलदान में रखा हुआ है। एक को रोज बदलते हैं दूसरे को अधिक समय तक सम्भाल रखना चाहते हैं। क्यों? इसलिए कि घर की छोटी मुन्नी ने यह बनाया इसलिए अधिक प्रिय हो गया। उसका अभिप्राय स्नेह की भावना से हुआ इसलिए उसम जो माधुर्य है, जो रसिकता है वह उस दूसरे गुच्छे में नहीं है जिसे बाजार से खरीद लाये हैं। दोनों गुच्छों पर स्नेह है, लेकिन एक को अधिक दिनों तक बनाये रखना चाहते हैं, क्योंकि उसमें आपका भी स्नेह है और उस छोटी मुन्नी का भी स्नेह है। यानी उसम उत्पादक का भी स्नेह है खरीदार (ग्राहक) का भी स्नेह है। इस तरह दोनो व्यक्त व्यक्तित्व से अंकित हो जाते है दोनों तरफ मनुष्य की

रूजवेल्ट और चर्चिल का संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित हुआ था। उसमें एक वाक्य था— दुनिया के सभी राष्ट्रों को चाहिए कि आध्यात्मिक और वास्तविक विचारों के कारण वे बल-प्रयोग का त्याग कर दें। यह गांधी या विनोबा का वाक्य नहीं है। यह सन् १९४१ में कहा गया था। प्रतिज्ञा होनी चाहिए कि दुनिया के सारे राष्ट्रों को बल-प्रयोग का त्याग करना चाहिए। इसमें रुकावट कहाँ है? रुकावट है अपने-अपने चित्त में। जहाँ रुकावट है, वहाँ उपाय कम होते हैं। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के समय हम लोग देहातों में जाया करते थे। गाँववालों की बहुत-सी शिकायतें हमें सुननी पड़ती थीं। वे कहते थे कि अंग्रेजी सरकार से हमें एक ही शिकायत है। वह यह कि ये लोग हमारी आवश्यकताओं को पूरी नहीं करते बल्कि अपने मन की चोरी कर लेते हैं। इसे गाँव की भाषा में कहते हैं 'दुखता कहाँ है और सेंकता कहाँ है?' आज रुकावट है मनुष्य के दिल और दिमाग में इसलिए दिल और दिमाग को बदलने की कोशिश करनी चाहिए। गांधी ने इसका नाम 'हृदय-परिवर्तन' कहा है। बल-प्रयोग से परिस्थिति को भले ही बदल सकें मनुष्य के दिल और दिमाग को नहीं बदल सकते।

मनुष्यता में विश्वास

विनोबाजी मध्यप्रदेश के जंगलों की ओर जा रहे थे जहाँ डाकू और लुटेरे रहते हैं। उस समय सम्पूर्णानन्दजी और गोविन्दवल्लभ पन्त ने कहा था कि विनोबाजी के साथ हमारा सहयोग रहेगा उनको जो सुविधाएँ चाहिए, वह देंगे। उनको जेलखाने में जाने नहीं देते थे जहाँ गुनहगार रहते हैं, तो पन्तजी आदि ने सोचा कि उन्हें क्यों न जाने दें? इसकी आलोचना की गयी। आलोचक का मानना था कि यह अवैधानिक है और समाज के लिए अपमान-जनक है। जो चोर हैं, खूनी हैं लुटेरे हैं उन लोगों से कहिये कि तुम लोग विनोबा की सभा में आ सकते हो? इस

तरह से गुनहगारों को आजादी देने का अर्थ है अधिकारी और अपनी जिम्मेदारी छोड़ दी है इसलिए विनोबाजी को यहाँ आने नहीं देना चाहिए। अब उस आलोचना का मुझे जवाब नहीं देना है। हमें यह सोचना है कि हृदय-परिवर्तन किसका करना है। साधुओं और सज्जनों के हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है? या जो आदमी गलत रास्ते पर जा रहे हैं उनका? सज्जनों का तो हृदय-परिवर्तन नहीं करना होता है, उनका मत-परिवर्तन करना होता है। यह बौद्धिक स्तर का काम है। आप उनको समझायेंगे और वे आपको समझायेंगे। लेकिन जहाँ बुद्धि संस्कार के अधीन है भावना का विकार हो गयी है विकारग्रस्त है वहाँ केवल युक्तिवाद से बुद्धि के प्रयोग से काम नहीं होता वहाँ हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता होती है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का हृदय-परिवर्तन तभी कर सकता है, जब दुराचारी और अपराधी मनुष्य की आत्मा में उसका विश्वास होगा उसकी विभूति पर विश्वास होगा। जब कोई कहता है कि इस मनुष्य का परिवर्तन नहीं हो सकता इसका उद्धार सम्भव नहीं है, तो इसका अर्थ है यह व्यक्ति विकारभूत मानव बन गया है। जो विकारभूत बन गया है उसका परिवर्तन नहीं हो सकता ऐसा मान लिया गया है। लेकिन जो मनुष्य दूसरों का और दुनिया का परिवर्तन करना चाहता है वह किसी मनुष्य को अपरिवर्तनीय नहीं मान सकता। हरएक मनुष्य में उसकी आत्मा होती है। मैं आत्मा का स्वरूप आदि नहीं जानता लेकिन मनुष्य की मनुष्यता में मेरा विश्वास है। मनुष्य का मूल स्वरूप स्नेहरूप है।

समत्वं योग उच्यते यह भगवद्गीता का वाक्य आज के समाजशास्त्र में है। योग-विद्या और योग का विज्ञान 'समत्व' है। सारे मनुष्यों के लिए सौहार्द मित्रता सौमनस्य—यही योग का विज्ञान है। सबके लिए कल्याण-कामना ही समत्व है, यही योग विद्या है। स्नेहपूर्ण व्यवहार और आचरण योग की कला कहलाता है। यही कर्म-कौशल है। इसके लिए मानव-निष्ठा चाहिए। केवल विधान-निष्ठा या विज्ञान-निष्ठा से काम नहीं

बनेगा। 'विज्ञान शिक्षा' में यदि मानव शिक्षा का अन्तर्भाव है, तो वह व्यापक अर्थ में 'विज्ञान शिक्षा' की बात अनुचित नहीं है। लेकिन विज्ञान का अर्थ केवल mass (जड़) और energy (शक्ति) ही लेते हैं तो उसमें से वह समाज निर्मित नहीं हो सकेगा जिसमें कोई अपना-पराया न हो मनुष्य आपस में संहार न करते हों। आज अणुशक्ति ने युद्ध विज्ञान को नहीं बदला है, लेकिन मानवता के भविष्य को बदल दिया है। अब मनुष्य केवल पदार्थनिष्ठ रहेगा तो काम नहीं बनेगा। पदार्थनिष्ठा का मतलब बाजार है। यह वस्तुनिष्ठा से भिन्न है, क्योंकि वस्तुनिष्ठा को मैंने सत्यनिष्ठा से मिला दिया है।

पदार्थसत्ता और आत्म-सत्ता

हमारे जमाने में दो-चार लेखक थे। कुछ क्रिश्चियन लेखक भी थे। क्रिश्चियन से मतलब यह कि वे अपने उपन्यासों में ईसामसीह के सिद्धान्तों के मूल विचारों का प्रतिपादन करते थे। इनमें प्रमुख दो थे—एक 'मेरी कोरेली' और दूसरा 'हालकेन'। मेरी कोरेली उपन्यास-लेखिका थी। ये लोग बहुत चारित्र्यवान् थे। मेरी कोरेली के दो उपन्यास थे : (१) The Mighty Atom और (२) Sorrows of Satan माइटी ऐटम का आशय यह है कि वह हमेशा चिन्तन करता है—'मैं परमाणु हूँ मैं परमाणु हूँ'। हमारे यहाँ के सभी दर्शनों में विविध दर्शन कणाद का माना जाता है। 'कणाद' शब्द का अर्थ है 'कण खाने वाला' एटम खानेवाला। उसने अणु को ही दुनिया का मूलभूत पदार्थ माना और अन्त में मरते समय भी 'पीलव पीलव' (अणु-अणु) कहते-कहते मरा। इस मनुष्य को और शैतान (Satan) को दोनों को सन्तोष नहीं मिला। दोनों का जीवन एक तरह की बेचैनी के कारण दीन हो गया था। उसका चित्रण मेरी कोरेली ने किया है।

पदार्थ-सत्ता जीवन में शान्ति और सन्तोष नहीं ला सकती। वह तो

केवल मानवीय यानी आत्म-सत्ता ही आ सकती है। यही अध्यात्म कहा जाता है। हम जिस समाज की कल्पना कर रहे हैं, उसकी प्राणभूत उपाधि होगी प्रेम स्नेह। यह उस आत्मा से भिन्न है, जिसके बारे में आजकल बहुत-सी किताबें निकल रही हैं। इस भूमिका से हालकेन ने किताब लिखी। इसमें वह कहता है, पापी मनुष्य को पाप से सन्तोष नहीं होता है उसका हृदय हमेशा व्यथित रहता है, उसमें ग्लानि रहती है। वैसे उपन्यास की दृष्टि से उसका दूसरा उपन्यास अधिक प्रसिद्ध है। लेकिन इस दृष्टि से लिखा हुआ यह उपन्यास—*Master of Man and Shadow of the Crime*—बहुत उत्तम है। मनुष्य के जीवन में घोरतर अपराध हो जाता है लेकिन उम्रभर वह छाया की तरह उसका पीछा करता है मानो कोई मालिक उसके पीछे लगा हुआ हो। वह अपराध की भावना उसको चैन लेने नहीं देती है। जैसे जेलखाने में वार्डन कैदी के पीछे पड़ा रहता है वैसे ही वह पाप पापी के पीछे पड़ा हुआ होता है। ये दोनो ईश्वरवादी हैं। डोस्टोवस्की प्रकृतिवादी था। उसका एक प्रसिद्ध उपन्यास है—Crime and Punishment। वह ईश्वरवादी नहीं है। पर इस उपन्यास मे वह कहता है कि अगर ईश्वर मर जाय तो सब कुछ ठीक है। जो करोगे वह सब पाप-पुण्य है, पवित्र है लेकिन वह पुण्य नहीं है क्योंकि ईश्वर मर गया है। अब ईश्वर को क्यो मारना चाहते है? स्कूल मे जो लड़का मास्टर से डरता है वह मास्टर की मृत्यु चाहता है घर मे जो लड़का बाप से डरता है वह बाप की मृत्यु चाहता है। जब कोई अंग्रेजो का बादशाह या राजा मर जाता था तो हमारा उससे कुछ बनता या बिगड़ता नही था फिर भी हम नाहक खुश होते थे क्योंकि मन मे भय और द्वेष दोनों रहते थे। धार्मिक लोगो के मन मे ईश्वर के लिए प्रेम नही है भय है। मनुष्य जिस ईश्वर से डरता है वह कभी नहीं चाहेगा कि वह ईश्वर रहे। ईश्वर से डरनेवाला भीतर से द्रोही होता है। केवल नास्तिक या

निरीश्वरवादी नहीं ईश्वर का द्रोही होता है। सब जगह नहीं झगड़ा है। ईश्वर मर जाय ताकि हम आजाद हो जायें।

ओरेल नामक एक लेखक है, जिसने अभी हाल में साम्यवाद पर एक पुस्तक लिखी है। सन् १९४८ में उसने लिखा कि १९८४ में साम्यवादी समाज का क्या चित्र होगा? स्नानावस्था में विमाम में क्या-क्या चलता है, उसका चित्र पास में रखे हुए एक रेकार्डर पर अंकित हो जाता है। बम्बई के पास लोनावला में समाधि का पाठ सिखाया रहे हैं। वहाँ एक कैवल्यधाम है, जहाँ योग का अभ्यास होता है। ईश्वर को मन की आवश्यकता नहीं है वह सर्व-साक्षी है, बैठे-बैठे ही सब उसे मालूम हो जाता है। इसलिए वह सबसे भयंकर है। मनुष्य चाहता है कि वह न रहे, तो अच्छा है। मनुष्य की विभूति में विश्वास ही आस्तिकता है। लेकिन हम क्या समझते हैं? ईश्वर की विभूति के विश्वास में और मनुष्य की विभूति के विश्वास में अन्तर है। दरअसल कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही आत्मनिष्ठा से निष्पन्न होते हैं। जहाँ आत्मनिष्ठा न हो वहाँ विश्वास पैदा नहीं हो सकता। गांधी कहता था कि जो सत्यनिष्ठ होगा वही मनुष्य-निष्ठ होगा जो सत्यनिष्ठ होगा वही वस्तुनिष्ठ होगा। विनोबा कहता है कि जो वैज्ञानिक होगा वही वैराग्यी होगा। मनुष्य केवल विज्ञाननिष्ठ रह द्रव्य (matter) में विश्वास रखे तो वह मनुष्यता की तरफ नहीं ले जायगा पशुता को तरफ नहीं ले जायगा वह शैतान की तरफ ले जायगा।

अपराधी का उद्धार सम्भव

इसमें से दो तरह के विचार और निकले हैं। बहुत सुन्दर विचार है। एक का प्रतिनिधि टॉल्स्टॉय है। अपराधियों के विषय में उसकी एक पुस्तक है—The Resurrection। एक अपराधी का पुनर्जीवन—पुनरुत्थान—होता है। क्या मनुष्य का पुनरुत्थान होता है? अपराधी मानव मृत मानव

केवल मानवीय मानो आत्म-सत्ता ही ला सकती है। यही अध्यात्म कहलाता है। हम जिस समाज की कल्पना कर रहे हैं, उसकी प्राणभूत उपाधि होगी प्रेम स्नेह। यह उस वासना से भिन्न है, जिसके बारे में आजकल बहुत-सी किताबें निकल रही हैं। इस भूमिका से हाकेन ने किताब लिखी। इसमें वह कहता है, पापी मनुष्य को पाप से सन्तोष नहीं होता है उसका हृदय हमेशा व्यथित रहता है, उसमें ग्लानि रहती है। वैसे उपन्यास की दृष्टि से उसका दूसरा उपन्यास अधिक प्रसिद्ध है। लेकिन इस दृष्टि से लिखा हुआ यह उपन्यास—Master of Man and Shadow of the Crime—बहुत उत्तम है। मनुष्य के जीवन में घोरतर अपराध हो जाता है, लेकिन उम्रभर वह छाया की तरह उसका पीछा करता है, मानो कोई मालिक उसके पीछे लगा हुआ हो। यह अपराध की भावना उसको चैन लेने नहीं देती है। जैसे जेलखाने में चाकर कैदी के पीछे पड़ा रहता है, वैसे ही यह पाप पापी के पीछे पड़ा हुआ होता है। ये दोनों ईश्वरवादी हैं। डोस्टोव्स्की प्रकृतिवादी था। उसका एक प्रसिद्ध उपन्यास है—Crime and Punishment। वह ईश्वरवादी नहीं है। पर इस उपन्यास में वह कहता है कि अगर ईश्वर मर जाय तो सब कुछ ठीक है। जो करोगे वह सब शास्त्र-युक्त है, पवित्र है लेकिन वह पुण्य नहीं है, क्योंकि ईश्वर मर गया है। अब ईश्वर को क्यों मारना चाहते हैं? स्कूल में जो लड़का मास्टर से डरता है वह मास्टर की मृत्यु चाहता है, घर में जो लड़का बाप से डरता है वह बाप की मृत्यु चाहता है। जब कोई अंग्रेजों का बादशाह या राजा मर जाता था तो हमारा उससे कुछ बनता या बिगड़ता नहीं था फिर भी हम नाहक खुश होते थे क्योंकि मन में भय और द्वेष दोनों रहते थे। धार्मिक लोगों के मन में ईश्वर के लिए प्रेम नहीं है, भय है। मनुष्य जिस ईश्वर से डरता है, वह कभी नहीं चाहेगा कि वह ईश्वर रहे। ईश्वर से डरनेवाला भीतर से द्रोही होता है। केवल नास्तिक या

निरीश्वरवादी नहीं ईश्वर का द्रोही होता है। सब कबड्ड यही हाल है। ईश्वर मर जाय ताकि हम आजाद हो जायें!

ऑरेल नामक एक लेखक है, जिसने अभी हाल में साम्यवाद पर एक पुस्तक लिखी है। सन् १९४८ में उसने लिखा कि १९८४ में साम्यवादी समाज का क्या चित्र होगा? स्वप्नावस्था में दिमाग में क्या-क्या चलता है, उसका चित्र पास में रखे हुए एक रेकार्डर पर अंकित हो जाता है। बम्बई के पास लोनावला में समाधि का ग्राफ निकाल रहे हैं। वहाँ एक कैवल्यधाम है जहाँ योग का अभ्यास होता है। ईश्वर की अब की आवश्यकता नहीं है, वह सर्व-साक्षी है, बैठे-बैठे ही सब उसे मालूम हो जाता है। इसलिए वह सबसे भयंकर है। मनुष्य चाहता है कि वह न रहे, तो अच्छा है। मनुष्य की विभूति में विश्वास ही आस्तिकता है। लेकिन हम क्या समझते हैं? ईश्वर की विभूति के विश्वास में और मनुष्य की विभूति के विश्वास में अन्तर है। दरअसल कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही आत्मनिष्ठ से निष्पन्न होते हैं। जहाँ आत्मनिष्ठा न हो वहाँ विश्वास पैदा नहीं हो सकता। गांधी कहता था कि जो सत्यनिष्ठ होगा वही मनुष्य-निष्ठ होगा जो सत्यनिष्ठ होगा वही वस्तुनिष्ठ होगा। विनोबा कहता है कि जो वैज्ञानिक होगा वही वेदान्ती होगा। मनुष्य केवल विज्ञान-निष्ठ रहे, द्रव्य (matter) में विश्वास रखे तो वह मनुष्यता की तरफ नहीं ले जायगा पशुता की तरफ नहीं ले जायगा वह शैतान की तरफ ले जायगा।

अपराधी का उद्धार सम्भव

इसमें दो तरह के विचार और निकले हैं। बहुत सुन्दर विचार है। एक का प्रतिनिधि टॉल्स्टॉय है। अपराधियों के विषय में उनकी एक पुस्तक है—The Resurrection। एक अपराधी का पुनर्जीवन—पुनरुत्थान—होता है। क्या मनुष्य का पुनरुत्थान होता है? अपराधी मानव मृत मानव

हो गया, उसने अपनी आत्मा का हनन किया है, फिर उसने अपना पुनरुत्थान कर लिया है। लेकिन इस पुनरुत्थान में समाज की सम्मति नहीं है। जो अपराधी आत्मोद्धार करना चाहता है, अपने प्रयत्न से ऊपर उठना चाहता है, उसके लिए यदि समाज में अवसर न हो तो वह हमेशा के लिए अपराधी हो जाता है और फिर वह असाध्य बन जाता है। क्या दुनिया में कोई असाध्य मानव है? टॉल्स्टॉय कहता है कि कोई मानव असाध्य नहीं है। विक्टर ह्यूगो ने 'ला मिज़रेबल' में कहा कि समाज अवसर नहीं दे रहा है। आदमी बार-बार भला बनना चाहता है और समाज उसे बार-बार अपराधी बनाता है। गांधी के अहिंसा के तत्त्वज्ञान में सामाजिक बहिष्कार घोर हिंसा मानी गयी। उसने कहा कि यह जितनी भयानक हिंसा है उतनी दूसरी कोई नहीं है। क्योंकि अपराधी को अपना सुधार करने के लिए अवसर ही नहीं है। क्या गुनहगार में चारित्र्य नहीं है? अक्सर ऐसा होता है कि व्यसनी और पापी मनुष्य में चारित्र्य की शक्ति होती है। पाप करने के लिए हिम्मत की आवश्यकता होती है। आगे चलकर पापी मनुष्य प्रामाणिक हो जाता है। वह कहता है कि मैं पापी हूँ। पापी में नम्रता होती है। पुण्यात्मा में नम्रता नहीं आती है इसलिए उसके उद्धार की सम्भावना भी कम होती चली जाती है। पापी में बहुत ही प्रामाणिकता होती है। प्रत्येक सज्जन के आगे खाई है। जरा फिसला और गिर गया तो खतम हो जायगा। जो पापी है उसके सामने जीवन का नक्शा अभी है, पूरा भविष्य है।

थामस हार्डी ने दो उपन्यासों में इसका चित्र दिया है। 'टैस ऑफ डरबरविल्स' और 'मेयर ऑफ कैस्टरब्रिज'—ये दोनों अपराधी हैं, लेकिन उनके चित्त में पवित्रता है। हमारे यहाँ इसका संकेत है। प्रातःकाल जितनी स्त्रियों का हम स्मरण करते हैं उन सबके इतिहास में या तो कोई अपराध है या उनके चारित्र्य पर अपवाद (इल्ज़ाम) आया है। अहल्या, द्रौपदी, सीता, तारा और मन्दोदरी—ये पाँच सतियाँ थीं। इनमें शुद्ध सती कोई भी

नहीं जिसके चारित्र्य पर बट्टा न लगा हो या जिसने कोई अपराध न किया हो। इसका अर्थ यह है कि दूसरे लोगों के प्रति हमारे मन में यह भावना कभी नहीं होनी चाहिए कि साधारण मनुष्य यदि दोष करता है या अपराध करता है तो उसका उद्धार नहीं हो सकता। मनुष्य में जब प्रेम होगा तब वह क्रांति कर सकता है। क्रांति सत्ता के प्रयोग से नहीं प्रेम के प्रयोग से होगी।

निरपेक्ष मानवता

तो क्रांतिकारी का आशय क्या होगा? उसकी मूर्ति किस रूप की बनेगी? वह रूप मानव-निष्ठा से बना हुआ होगा। विश्व के आज के सभी महात्माओं में यही कमी है। यह भावना अधिक-से-अधिक किसीमें है तो वह है जवाहरलाल नेहरू में। अब रूस और अमेरिका दोनों साधन-दान वस्तुदान धनदान आदि कर रहे हैं। इन सबमें उनका कुछ-न-कुछ उद्देश्य है, कुछ अभिप्राय से यह सब हो रहा है। जैसे हमारे यहाँ भगवान् के नाम से उसके सामने द्रव्यदान करते हैं। उसमें हमारे अपने लाभ की दृष्टि रहती ही है। अब वे लोग जान गये हैं कि युद्ध शस्त्रास्त्रों से नहीं जीता जाता अब उसका साधन दूसरा ही है, और वह है, प्रतियोगिता का अवधारण। अब आर्थिक दान की स्पर्धा से यह होगा। आज प्रतियोगिता यह होगी कि पिछड़े हुए राष्ट्रों को कौन कितना दान देता है। सारा विश्व आज दान का क्षेत्र बन रहा है। लेकिन यह सारा स्वार्थमूलक दान हो रहा है। इस प्रतियोगिता के कारण दुनिया में एक जवाहरलाल नेहरू ही दिखाई दे रहा है, जिसका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। विदेशों में आज या तो गांधी का नाम लेते हैं या जवाहरलाल नेहरू का। यह एक प्रतीक है। हम कमजोर हैं दीन हैं दुःखी हैं। हम दारिद्र्य के कारण हृदय हीन बन गये हैं हमारी बुद्धि संकीर्ण हो गयी है। आज विश्व को निरपेक्ष मानवता की जरूरत है। मानव ऐसे हों जो देश-काल की मर्यादाएँ नहीं

मानते जिनकी विभूति देश-कालातीत होगी। ऐसे मानव की आज विश्व में प्रतिष्ठा है।

राष्ट्रों में पारस्परिक जिम्मेदारी हो

जितनी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ हैं, उन सबके चित्त का आशय अखिल मानवीय होना चाहिए। अब तक वह साम्प्रदायिक रहा है। जहाँ साम्प्रदायिक वृत्ति है वहाँ सफलता नहीं है। सन् १८१७ में ब्रिटेन और अमेरिका के प्रतिनिधि बैठे और कैनेडा की सीमा को सेनारहित कर दिया। दो देशों की सीमा है, लेकिन सेना नहीं। यह एक अद्भुत घटना थी। दोनों के आपस में समानता या यानी दोनों एक दूसरे पर विश्वास कर सकते थे। इंग्लैण्ड के बड़े-बड़े राजनेताओं ने कहा कि यह कूटनीति नहीं है बड़ी हिम्मत का काम हो रहा है।

भारत और चीन भारत और पाकिस्तान की सीमाओं पर सैन्य-विसर्जन क्यों नहीं हो सकता? इसलिए कि हम दुर्बल हैं। इस देश का आदमी निःशस्त्र है लेकिन बहादुर नहीं है। जो निःशस्त्र है, लेकिन वीर नहीं है, उसमें अहिंसा का विकास नहीं हो सकेगा। हमारे लिए परिस्थिति अनुकूल है हमारे यहाँ इस ओर आकांक्षा है, क्योंकि हम निःशस्त्र हैं। शस्त्र-बल से हम अपनी सीमा का संरक्षण नहीं कर सकते। केवल हम नहीं दुनिया का कोई भी देश शस्त्र के बल पर अपनी सीमा की रक्षा नहीं कर सकता। इसके लिए हिम्मत चाहिए। हमारे नेता यथाशक्यस्वस्थ हैं जिनकी विभूति सार्वभौम है। दूसरे देशों के नेताओं की विभूति संदेशगामी है उनकी विभूति केवल उनके राष्ट्र तक ही परिमित है लेकिन उनके नागरिकों में हमारी अपेक्षा अधिक वीरता है। हम कहते तो हैं कि यह गांधी का देश है बीरों का देश है लेकिन हमारे हृदय में इस बात का प्रतिबिम्ब पैदा नहीं होता प्रतिध्वनि नहीं निकलती। इसीका यह परिणाम है। हम दशा में क्या भावना है एक भावना सीटो-

मार्टोमार्लो की है। उनकी धारणा यह है कि कोई भी कौमी मनुष्य आज की स्थिति से संतुष्ट नहीं रह सकता जो छावनियाँ एक-दूसरे के मुकाबले में बैठी हैं आमने-सामने—इस परिस्थिति को यदि हम रहने देते हैं, तो नरक में जाने का समय दूर नहीं है। अब हम सोचना चाहिए कि ये दो कैम्प क्यों बनाये गये। नार्मन एंजल्स का जिक्र मैंने किया था। उनकी पुस्तक 'The Great Jlluaion का सन् १९१८ म दूसरा संस्करण निकला। नाम वही रखा लेकिन एक शब्द जोड़ दिया Now (अब)। उसम वह कहता है कि हम संयमी स्वतंत्रता की जगह विवेकयुक्त (सम्य) स्वतंत्रता चाहिए। नागरिक स्वतंत्रता के लिए प्रत्येक नागरिक के बीच पारस्परिक उत्तरदायित्व आना चाहिए। आगे वह कहता है कि यह पारस्परिक जिम्मेदारी राष्ट्रों में आनी चाहिए। आज सारे लोगों के सामने यही प्रश्न है कि राष्ट्रों के बीच यह पारस्परिक उत्तरदायित्व क्यों नहीं आ रहा है।

निःशस्त्रीकरण म बाधा

युद्ध का अंत लाने के लिए निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता है। निःशस्त्रीकरण हुए बिना युद्ध का अंत नहीं होगा। लेकिन अभी युद्ध का अंत करने की इच्छा मानव के हृदय तक नहीं पहुँची है। इच्छा होती तो मार्ग निकल आता। जहाँ संकल्प नहीं वहाँ मार्ग भी नहीं। यह संकल्प लाखों में होना चाहिए। आज आर्थिक राष्ट्र-परिषद् है लेकिन हम लोगों का कहना है कि आर्थिक लोक-परिषद् होनी चाहिए। क्योंकि लोग लोक-शान्ति चाहते हैं। जो इस लोक-परिषद् के प्रतिनिधि होंगे उनके चित्त में रुकावट नहीं होनी चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि यह बात सिद्ध होने योग्य नहीं है। दूसरा हमारी राष्ट्रीय स्वतंत्रता अक्षुण्ण होनी चाहिए और हमारे राष्ट्र की सत्ता सर्वोपरि होनी चाहिए—यह जो राष्ट्रीय सार्वभौमत्व और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की धारणा है इसके

कुसंस्कारों के कारण हम आगे नहीं बढ़ सकते। हम चाहते हैं कि बेत्रा का आश्रय सार्वभौम हो लेकिन आज से राष्ट्रीय स्वतंत्रता की बात करते हैं। इसका परिणाम क्या होगा ?

सन् १९४९ में एक कन्जर्वेटिव एम पी ने कहा कि वे कम्युनिस्ट को एक राजनैतिक पक्ष का सदस्य नहीं मानते हैं बल्कि यह समझते हैं कि कम्युनिस्ट ईसाई संस्कृति के लिए एक भयानक संकट है, और मनुष्य की विभूति के लिए एक कैन्सर है। यह भावना हमारे यहाँ भी है। यहाँ तक कहा जाता है कि कम्युनिस्ट के साथ सहयोग करने का अर्थ है, शैतान के साथ सहयोग करना। प्रश्न यह है कि क्या लोहे को छूने से पारस-पत्थर लोहा बन जायगा ? यह मानवनिष्ठा नहीं है।

जिन परिस्थितियों से कम्युनिज्म जन्म लेता है, वहाँ क्या कम्युनिज्म ने पैदा किया है ? दुःखी और दरिद्री मनुष्य के लिए कम्युनिज्म खतरा नहीं है, आशा है। उन लोगों के लिए वह उद्धारक के रूप में दिखायी देता है। इस परिस्थिति को सैनिक समझौतों से नहीं बदल सकते हैं। पारस्परिक सुरक्षा का काम सामूहिक शस्त्र-बल से या शक्ति के संतुलन से नहीं हो सकता। सैनिक समझौतों से परस्पर अविश्वास बढ़ता है, निःशस्त्रीकरण का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता। अब दोनों के बजाय एक तीसरी शक्ति की आवश्यकता है, जो परस्पर अविश्वास की इस मनोवैज्ञानिक दुर्बलता पर काबू पा सके। यह लोकयुग है इस युग की विभूति कोई संत राजा सिपाही या सत्ता कोई नहीं है वह है साधारण मनुष्य। इस साधारण मनुष्य से यह शक्ति आनी चाहिए, उसे अपना काम शुरू कर देना चाहिए। जिस क्षेत्र में जिस मर्यादा से वह हो सकता है, उस क्षेत्र से उस मर्यादा में शुरू हो जाना चाहिए। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'—यह ऐसा धर्मकाय है जिसका अल्पमात्र पालन भी महान भय से मुक्त कर सकता है। पूर्व और पश्चिम दोनों के सामने जर्मनी का बड़ा सवाल है। युद्ध में जो लोग जीते उन लोगों ने संधिपत्र से यह शर्त

रखो कि जर्मनी का निःशस्त्रीकरण होना चाहिए। जर्मनी का निःशस्त्रीकरण किया। इसके बाद परिस्थिति बदल गयी। जर्मनी के कुछ हिस्से पर कम्युनिज्म का कब्जा हो गया। फिर जिन लोगों ने पहले कहा था कि जर्मनी का निःशस्त्रीकरण होना चाहिए, अब वे ही कहने लगे कि जर्मनी का शस्त्रीकरण होना चाहिए। रूस कहता है कि नहीं होना चाहिए, लेकिन पश्चिम के राष्ट्र कहते हैं कि होना चाहिए और साथ-साथ पश्चिम और पूर्व जर्मनी का एकीकरण भी होना चाहिए। रूस कहता है कि या तो एकीकरण करो या फिर निःशस्त्रीकरण करो दोनों एक साथ नहीं होंगे। "तुम ही ने तो पहले कहा था?" 'जिस वक्त हमने कहा था तब आप हमारी तरफ थे लेकिन अब हम दोनों अलग-अलग गुट में हैं और एक दूसरे के शत्रु हैं। कम्युनिज्म से लड़ने के लिए निःशस्त्र जर्मनी उपयोगी नहीं है, सशस्त्र जर्मनी चाहिए। होना यह चाहिए था कि जर्मनी के अनिवार्य निःशस्त्रीकरण के बाद इन विजयी राष्ट्रों का स्वेच्छा से निःशस्त्रीकरण होता। उन लोगों ने पहले कहा था कि 'यह जर्मनी का निःशस्त्रीकरण हम इसलिए कर रहे हैं कि आगे चलकर सारे यूरोप का हमें निःशस्त्रीकरण करना है। जर्मनी का जबरदस्ती से हो रहा है हमारा अपनी स्वेच्छा से होगा। अगर ऐसा हुआ होता तो आज जर्मनी में जो कटुता है वह नहीं होती। जर्मनी की भावना है कि 'तुम लोग जीते हुए हो इसलिए शस्त्र रखते हो और हम हारे हुए हैं इसलिए हमें शस्त्र नहीं रखने देते। बाप बड़ा हो गया इसलिए हुक्का पी सकता है और लड़का छोटा है, इसलिए नहीं पी सकता। यह लड़के के मन में अखरता है। वह सोचता है कि जिस दिन मैं बाप बनूँगा उस दिन पहला काम हुक्का पीने का होगा। जापान को शस्त्रीकरण करना पड़ा और अब जर्मनी कर रहा है। दो गुट बनने से यह सब हुआ है। यही निःशस्त्रीकरण में रुकावट है।

सामूहिक सुरक्षा का प्रश्न

सामूहिक सुरक्षा तभी वास्तविक और उत्तरदायित्वपूर्ण होगी जब

उसकी भूमिका हार्दिक होगी। भूमिका राजनैतिक नहीं हो सकती नैतिक होनी चाहिए। मैं नैतिक शब्द की जगह हार्दिक शब्द कहता हूं। हार्दिक आधार होता है तो एक-दूसरे के साथ बैठकर परामर्श कर सकेंगे। कुछ महापुरुष होते हैं जो विपत्ति में भी पुरुषार्थ का अवसर खोज लेते हैं जैसे गांधीजी थे। भारत एक निःशस्त्र देश था पर वह पुरुष इस देश के लोगों में भी कितनी वीरता और कितना पुरुषार्थ पैदा कर सका। भारत का निःशस्त्रीकरण भी जबरदस्ती का है। तीन हजार आदमी बाहर से आये और तीस करोड़ लोगों से कहा कि हथियार हमें दे दो। सबने दे दिया। यह कैसे हुआ? इसकी प्रकृति में ही अहिंसा रही होगी। लेकिन जब चीन का मामला आया तो शस्त्र साफ हुए। विनोबा कहते हैं कि 'यह अध्यात्मियों और त्यागियों का देश है, यहाँ तो गांधी के जाने के बाद यहाँ अहिंसा की झांकी दीखने लगी यहाँ यह आगे बढ़ना चाहिए था। जो जर्मनी में हुआ जो जापान में हुआ वही भारतवर्ष में हो रहा है। यहाँ भी वही परिस्थिति का अन्तर्विरोध है। आल्डुअस हक्सले ने एक छोटी सी पुस्तक लिखी है—'Science Peace and Liberty'। उसमें एक वाक्य आता है—'जिन लोगों ने शस्त्र-प्रयोग की पराकाष्ठा की है शायद उन्हींमें से एक राष्ट्र यह हिम्मत करे कि अहिंसा का प्रयोग किया जाय।

भूखे का भगवान : रोटी

हमारा देश भूखा है। एक दफा श्रीरेनभाई ने कहा कि जहाँ तक हो सके हम लोग ग्रामोद्योगी चीजों का उपयोग करें। पहले तो मैंने कुछ विरोध प्रकट किया। आखिर ऐसा सोचा गया कि कम-से-कम जिन चीजों में हमें ग्रामोद्योग का आग्रह है वे चीजें अगर मिल में बनती हों तो हम उनका बहिष्कार करें पिकेटिंग शुरू करें। उन्होंने कहा कि मेरी सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि कल अगर सरकार हमसे कहे कि चलो हमारे साथ

गाँवों में जाकर गाँववालों से पूछें कि आप लोग कौन-सी चीज पसन्द करेंगे तो गाँववाले मेरी तरफ नहीं बोलेंगे बल्कि सरकारवालों का समर्थन करेंगे। इसका कारण क्या है? इस देश का मनुष्य इतना दीन और दरिद्र बन गया है कि उसके मन में एकमात्र आकांक्षा भौतिक वैभव की है। उसकी भाषा तो आध्यात्मिक है। जब वह धार्मिक था तब स्वर्गकांक्षी था पर अब वह देशभक्त बना तो अमेरिकाकांक्षी बन गया। अब उसका स्वर्ग परलोक में नहीं है, अमेरिका में और रूस में है। इसलिए इस दीन और दरिद्र मनुष्य की स्थिति पतित हो गयी है। इस स्थिति में उसे जो रोटी देता है, वही उसका मालिक है। वही गुरु है और वही भगवान् है।

नेतृत्व की सामर्थ्य

इसलिए गांधी और विनोबा ने अपनी क्रान्ति के साथ-साथ विधायक कार्यक्रम को जोड़ दिया है। ऐसा कार्यक्रम जो भौतिक भी हो लेकिन उसका मूल्य नैतिक हो। यानी नैतिकता के आधार पर एक भौतिक कार्यक्रम। हमारे देश में यह प्रयास एक तरफ चल रहा है तो उधर यूरोप में जर्मनी के एकीकरण का प्रयास चल रहा है। वहाँ की परिस्थिति में आज आवश्यकता निःशस्त्रीकरण की है। लेकिन उसमें रुकावट यह है कि परिस्थिति जिन लोगों के हाथ में है उनके हृदय में हिम्मत नहीं है। पारस्परिक प्रेम और विश्वास हो तो वह हिम्मत आ सकती है। उसमें मतवाद राष्ट्रवाद और सम्प्रदायवाद तीनों और भी रुकावटें पैदा करते हैं। चौथा भी एक है वर्गवाद। अब ऐसे नेता की आवश्यकता है, जिसका चित्त इन चारों प्रकार के विरोधों के ऊपर उठा हुआ हो और जिसके पास नैतिक शक्ति हो। वैसा नेता जवाहरलाल नेहरू या विनोबा हो सकता है, और तब हो सकता है, जब भारतवर्ष के साधारण मनुष्य का समर्थन उन्हें प्राप्त हो यानी यहाँ का साधारण मनुष्य जब वह करेगा

कि 'हाँ यह जो कह रहा है वह सही है, उसके साथ मेरी भावना है।' नहीं तो उनका केवल नेतृत्व होगा भावना होगी लेकिन सामर्थ्य नहीं होगी। उस नेता के पीछे लोक-प्रेरित और लोक निर्भर सामर्थ्य नहीं होगी। इसी प्रकार जहाँ लोगों का समर्थन प्राप्त नहीं है, वहाँ निःशस्त्री-करण के प्रश्न में शक्ति नहीं होगी। परिस्थिति यहाँ तक आकर रुक गयी है। अब इस सारी परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिए, कारण खोजना चाहिए और कारण समझने के बाद उसके निवारण में सारी शक्ति लगानी चाहिए। अब सारे वैज्ञानिक सारे नेता सारे राजनीतिज्ञ सारे युद्ध निपुण लोग इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि अब दुनिया में शस्त्रास्त्रों से कोई समाधान नहीं होगा। सबने कहा है कि निःशस्त्रीकरण शस्त्र प्रयोग के स्थान पर कानून का बल स्थापित करने के निर्णय का तर्कसंगत परिणाम है। वारसेल्स का समझौता इसके लिए ही हुआ था 'लीग आफ नेशन्स' की स्थापना भी इसके लिए ही हुई थी। संकल्प यह था कि शस्त्र की सत्ता की जगह मानवीय विधान या कानून की सत्ता प्रस्थापित हो।

शान्ति सबके लिए : सब शान्ति के लिए

मैंने पुलिस का उदाहरण दिया था। पुलिस न तो कानून बना सकती है न ही न्याय दे सकती है, वह केवल यह करती है कि कानून के अमल में यदि हिंसा होती हो तो उसे रोकती है। लोगों ने सोचा कि संसार में अब आन्तरिक सेना नहीं होगी आन्तर्राष्ट्रिक पुलिस होगी। यह पुलिस जागतिक कानून के अमल में कहीं हिंसा होगी तो उसे रोकने में उपयोगी होगी। सामूहिक संरक्षण अब राष्ट्रों के अलग-अलग गिरोह बनाकर नहीं हो सकता 'सीटो' 'नाटो' आदि धाराएँ बनाकर नहीं हो सकता। सामूहिक सुरक्षा का अर्थ है विश्व की सुरक्षा। इसका अर्थ है कि मानवता का जो कानून है उसका भंग करनेवाले पर हम शस्त्र का उपयोग करेंगे। लेकिन यह असम्भव हो गया है क्योंकि अभी तक राष्ट्रों को

यह बोध नहीं हुआ है कि राष्ट्रों की सुरक्षा शस्त्रास्त्रों से नहीं हो सकती। सभी राष्ट्रों को मिलकर कहना चाहिए कि 'शान्ति सबके लिए और सब शान्ति के लिए।

सेवा के दो पहलू

कानून के पालन की पहचान और कसौटी क्या है? वह पहचान और कसौटी यह है कि समाज में पुलिस का उपयोग कम-से-कम हो। दुनिया में अत्यन्त कार्यक्षम पुलिस वह होगी जिसका उपयोग कभी न करना पड़े। यह उसकी कसौटी है। तब कहा जा सकेगा कि निःशस्त्रीकरण की तरफ कदम बढ़ रहा है। इसके लिए नैतिक और मानवीय वातावरण चाहिए। क्रान्तिकारियों को अपने-अपने क्षेत्र में वह वातावरण बनाना चाहिए। उस क्षेत्र की जो प्रमुख समस्याएँ हैं जिनका समाधान तत्काल होना आवश्यक है उनको लेकर आगे बढ़ना चाहिए। उनके समाधान की प्रक्रिया शान्ति और मानवीय विकास के अनुकूल प्रक्रिया होगी तो वह समाज-परिवर्तन की अहिंसक प्रक्रिया को जन्म देगी। वह निःशस्त्रीकरण के लिए, दुनिया से युद्ध-संस्था को समाप्त करने के लिए, अहिंसक पुरुषार्थ जाग्रत करने की तैयारी होगी। इस परिस्थिति में हिंसा का—चाहे वह देश की आन्तरिक हिंसा हो या बाहर की—मुकाबला करने के दो उपाय हैं। एक हिंसा या आगामी हिंसा की मनोवृत्ति का प्रतिबन्ध होना चाहिए। ये प्रतिबन्धक योजनाएँ क्रान्तिकारी योजनाएँ होंगी। शान्ति-सैनिक की समाज-सेवा क्रान्तिकारी होनी चाहिए। यह सेवा का एक पहलू है। दूसरा पहलू यह कि सेवा आत्मोद्धार का भी साधन होना चाहिए। ऐलीजाबेथ फ्राई, फ्लारेन्स नाइटिंगेल जान होवर आदि ने बीमारों, कैदियों और अपराधियों की सेवा की। उन्होंने माना कि इस सेवा में ईश्वर-प्राप्ति है। उनके सामने यह सवाल नहीं आया कि इससे शान्ति और समाधान है या नहीं उनके लिए वह ईश्वर को खुश करने

का साधन था। उनके मन में कभी विरोध पैदा नहीं हुआ। लेकिन हम कहते हैं कि यह केवल ईश्वर को खुश करने का ही साधन नहीं है, बल्कि समाज में क्रान्ति करने का भी साधन है। इसके साथ हमारी यह दूसरी निष्ठा भी पुष्ट रहनी चाहिए। तब यह आकृति आयेगी। हममें इस प्रकार का प्रयत्न नहीं है इसलिए हमारी अहिंसा केवल औपचारिक रह गयी है, वास्तविक नहीं बनी। वास्तविक अहिंसा के लिए जिस प्रकार की तैयारी की आवश्यकता है, उसका संकेत मैं यहाँ कर रहा हूँ।

१ ५ ६ (प्रातः)

●

वस्तुस्थिति तो यह है कि जीवन में आदि और अंत नहीं है। उसकी 'पराकाष्ठा' 'परमगति' कभी आती नहीं है। जिसमें आदि नहीं और अंत नहीं उसमे 'काष्ठा' नहीं है, अनंतत्व है। इसलिए इस संभावना को बढ़ाते चले जाना है। व्यवहार्यता अपने मे कोई स्थिति नहीं है, वह गति है। जीवन की गति अनंत है, उसकी कोई सीमा नहीं है। हम शक्ति बढ़ाते चले जाते है जितनी शक्ति बढ़ती है, उतनी ही संभावनाओं का क्षेत्र भी बढ़ता जाता है।

शक्ति और सम्भावना

लोकमान्य तिलक ने गीता-रहस्य लिखते समय जहाँ-जहाँ 'योग' शब्द आया है वहाँ-वहाँ कोष्ठक में 'कर्म' शब्द भी लिख दिया। भगवद्गीता के हर अध्याय के अंत में 'इति ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' लिखा हुआ है। उसे कर्मयोग-शास्त्र कहें, अनासक्तियोग कहें या चाहे जो नाम दें, 'उसमें एक है जीवन की कला और दूसरा है जीवन की शिक्षा (Science of Life)। यह योग है, कर्मयोग। हम संभावनाओं को बढ़ाने के लिए शक्ति का विकास करते है। संभावना हमेशा शक्ति से आगे रहती है। हमारी प्रगति से शक्ति का क्षितिज हमेशा आगे रहता है। क्षितिज संभावना है, Horizon है। प्यारेलालजी की एक पुस्तक है New Horizons नये क्षितिज। विनोबाजी की भी एक छोटी-सी पुस्तक है। छोटी होते हुए भी उसमें बहुत आशय भर दिया है। क्षितिज वह स्थान है जहाँ आसमान और जमीन का मिलन होता है। इसन को लोगों ने आसमान की वस्तु माना और व्यवहार को धरती की वस्तु माना। दर्शन को अगम और निकालाबाधित माना व्यवहार को तात्कालिक माना। इसमे सारांश यह है कि जीवन की कला या व्यवहार जीवन की शक्ति को बढ़ाने मे है। जीवन की शक्ति का मतलब है जीने की क्षमता। जीवन मे जितनी जीने की शक्ति बढ़ती चली जायगी उतनी दूसरों को अपने जीवन मे शामिल करने की संभावना बढ़ती चली जायगी।

जीवन की सम्पन्नता

जीवन के संविभाजन (Sharing) की दृष्टि से हम विचार कर रहे हैं। जिम्मेवारी के संविभाजन से शुरू किया। जिम्मेवारी में हम जब दूसरों को शामिल करते हैं और स्वयं शामिल होते हैं तब जीने का अभिक्रम किसका रहेगा? जीवन जीने में दूसरे का अभिक्रम नहीं होता। जीवन अपना है। कहते हैं कि जीवन यानी Self Preservation (स्वसंरक्षण) नैसर्गिक प्रवृत्ति (Instinct) है। यानी जीवन-रक्षा की प्रवृत्ति हमारी प्रथम प्रवृत्ति है। अभिक्रम हमारी अपनी ओर से होता है इसलिए जीवन जवाबी (Responsive) नहीं है, निरपेक्ष (Absolute) है। जो जवाबी जीवन है, वह 'प्रतिजीवन' है। हमारा रुख उसकी ओर नहीं है। जो निरपेक्ष जीवन है शुद्ध और केवल जीवन है, जो जीवन जीने के लिए जीवन है, वह उन्मुक्त जीवन है। इस दृष्टि से जिम्मेवारी का आरंभ हमारी तरफ से होता है। दूसरों को हमारे जीवन में शामिल करना है, क्योंकि इसीमें सम्पन्नता है, परिपूर्णता है। हमारी आकांक्षा है। जिसमें जीवन की आकांक्षा है उसकी यह जिम्मेवारी है। यही अमर जीवन है। जीवन की रिक्तता और भव्यता जीवन के आकार और साधन नहीं हैं। जीवन की विशालता में उसकी भव्यता नहीं है। Affluent Society नाम की एक पुस्तक निकली है। उसमें कथन है—एक वैभव-सम्पन्न समाज है उसमें सर्व समृद्धि है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि उसमें जीवन का आनंद और जीवन की रुचि भी हो। कई सम्पन्न और अमीर हैं जिनके पास इतनी समृद्धि और वैभव है कि उनके सामने यही समस्या है कि उसका आखिर क्या करें। इसे जीवन की सम्पन्नता नहीं कहते हैं। वैभव जीवन को सम्पन्न नहीं बनाता। इसी तरह अतिप्रचुरता भी जीवन को सम्पन्न नहीं बनाती। अतिविपन्नता जीवन को सम्पन्न नहीं होने देती।

जीवन स्वयं मापदण्ड

सम्पन्नता का कोई माप-दण्ड नहीं है। जीवन-स्तर क्या है? जीवन का स्तर नापने का पैमाना स्वयं जीवन ही है। ग्रीक लोगों ने कहा था कि मनुष्य के जीवन की सभी चीजों का माप मनुष्य ही है। उसी तरह जीवन को नापने का कोई दूसरा पैमाना नहीं है। दूसरा पैमाना खोजने चलेंगे तो चक्कर में पड़ेंगे। यह कोरी कल्पना है। कामकाज के लिए हिसाब बन सकता है। लेकिन जीवन का पैमाना नहीं निकलता है। सर्वोदय का जीवन-स्तर, साम्यवाद का जीवन-स्तर या पूँजीवाद का जीवन-स्तर—ऐसा कुछ नहीं है। ऐसा कोई पैमाना नहीं है, न हो सकता है कि यह कम-से-कम स्तर (Standard) है और यह अधिक-से-अधिक स्तर है। व्यवस्था के लिए कुछ मान लें तो यह अलग चीज है। लेकिन कोई निरपेक्ष स्तर नहीं हो सकता। इसीलिए हमारे यहाँ त्याग की कोई सीमा नहीं रखी है। गांधी-सेवा-संघ में एक बार जीवन-स्तर का प्रश्न आया। गांधीजी के सामने यह प्रश्न बार-बार आता था। चरखा संघ ग्रामोद्योग संघ आदि संस्थाओं के सामने भी आता था। इस बारे में कुमारप्पाजी का कहना था कि गांधी-अर्थशास्त्र जैसी कोई चीज नहीं है। वे तो गांधीवादी अर्थशास्त्री माने जाते हैं। उन्होंने गांधीवादी अर्थशास्त्र नामक एक पुस्तक भी लिखी है। उसमें महत्त्व वाक्य यही है कि गांधीवादी अर्थशास्त्र जैसी चीज है ही नहीं। उनका कहना था कि इस तरह से जीवन के स्तर का निर्णय नहीं हो सकता। उस समय राजेंद्रबाबू अध्यक्ष थे। उनका कहना था कि हमारा देश ऐसा है जहाँ लँगोटी भी परिग्रह मानी जाती है और उञ्छवृत्ति को जीविका का परम साधन माना जाता है। उञ्छवृत्ति से मतलब है पेड़ से गिरनेवाले फलों और खेत में कटाई के बाद पड़े रह जानेवाले अनाज के दानों पर गुजारा करना।

स्वायत्त प्रतिरक्षा

जिस देश में स्वाद की ओर अपरिग्रह की कोई सीमा नहीं मानी गयी उस देश में जीवन-स्तर निश्चित करना बहुत मुश्किल है। स्तर (Standard) प्रतीकात्मक और उपलक्षणात्मक हो सकते हैं। आज सामाजिक और आंतरिक जीवन में सुख और दुःख आनन्द और शोक जिम्मेवारी और स्वतंत्रता को बाँट लेने की प्रवृत्ति रुक गयी है। विपत्ति और संपत्ति वैभव और भय—इन सबको बाँट लेने से हमारा विकास कितना हुआ है इस पर हमारी सभ्यता की पहचान होती है। यही स्तर (Standard) है। कुमारप्पाजी ने एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है—Economy of Permanence. (स्थायी समाज-व्यवस्था)। उसी आधार पर हमने यहाँ प्रतिरक्षा की समस्या का विचार किया और उसी दृष्टि से यन्त्रीकरण और नि-यन्त्रीकरण का भी विचार किया। अंततः हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सामूहिक प्रतिरक्षा पारस्परिक जिम्मेवारी से ही हो सकती है। सामूहिक प्रतिरक्षा का अर्थ है सामाजिक सुरक्षितता। यह अनुबन्धों से हो नहीं सकता। यह तब होगा जब मनुष्यों में पारस्परिक दायित्व होगा। प्रतिरक्षा के लिए दो मनुष्यों के बीच तीसरा मनुष्य आवश्यक नहीं होना चाहिए। पुरुष और स्त्री के बीच में भी किसी तीसरे की जरूरत नहीं होनी चाहिए। यह व्यक्तियों की बात हुई। इसीको राष्ट्र के लिए भी लागू करना चाहिए। राष्ट्र और राष्ट्र के बीच प्रतिरक्षा के लिए तीसरी आयुधिक शक्ति की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, होगी तो भी बहुत कम होनी चाहिए। सार्वजनिक संरक्षण के लिए ऐसी किसी संस्था की जरूरत होगी तो भी उसका उपयोग कम-से कम होगा। राष्ट्रों के आंतरिक व्यवहारों में भी यही होना चाहिए। जहाँ पुलिस का उपयोग कम-से-कम होता है वह राष्ट्र सुव्यवस्थित कहा जाता है, उसी प्रकार आर्थिक संरक्षण के लिए जो संस्था बनी होगी उसका उपयोग कम-से-कम होना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीयता

फिलिप नोयेल बेकर की किताब का उल्लेख मैंने किया है। उसका कहना है कि आज की सारी सैनिक व्यवस्था और सैनिक तत्वों को 'संरक्षण' का नाम देना भाषा का दुरुपयोग है। यद्यपि उसने लोकतांत्रिक देशों की प्रतिरक्षा-नीति के बारे में यह लिखा है, फिर भी ऐसी प्रतिरक्षा-नीति का इतिहास साम्यवादी राष्ट्रों का भी दिया जा सकता है। कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो से लेकर आज तक उनकी यह प्रतिज्ञा है कि दुनिया में युद्ध का अन्त होना चाहिए। वे अपने प्रत्येक प्रस्ताव में इस संकल्प को दुहराते हैं। रूस की तरफ से लीग आफ नेशन्स में दूसरा एक प्रस्ताव यह रखा गया कि संपूर्ण निःशस्त्रीकरण होना चाहिए। बाद में उन लोगों ने यह प्रस्ताव वापस ले लिया और शस्त्रों की दौड़ शुरू हुई। यह पहले महायुद्ध के पहले की बात है। हेग-कान्फरेन्स में लेनिन ने निःशस्त्रीकरण का एक प्रस्ताव रखा था। उनकी ओर से शुरू से ही यह प्रतिज्ञा रही है कि जहाँ अंतर्राष्ट्रीयतावाद शुरू होता है, वहाँ वर्ग-संघर्ष भले हो सकता है लेकिन युद्ध नहीं होगा। फिर भी उनके लिए यह सब निरपेक्ष नहीं है। अगर निरपेक्ष को मानना होगा तो हिंसा को ऐसी मानती होगी और साम्यवाद का सिद्धान्त यह है कि जीवन में कोई ऐसी नहीं है। साम्यवाद हमेशा अंतर्राष्ट्रीय ही हो सकता है किसी परिस्थिति में समाजवाद एक देश में जोरों से फैला यह अलग बात है। ट्राटस्की लेनिन और स्टालिन का यही झगड़ा था। दो पुस्तकें निकली हैं—The Prophet Armed और The Prophet Unarmed इन दोनों पुस्तकों में यहाँ के जीवन का अद्भुत और रोमहर्षक इतिहास भरा हुआ है। इन लोगों का सारा झगड़ा अन्तर्राष्ट्रीयता को लेकर है। चालीस साल से ये लोग कह रहे हैं कि दुनिया में राष्ट्र राष्ट्र के बीच युद्ध होना अपरिहार्य है। लेकिन अब दो गुट (Blocks) मान लिये हैं। इससे युद्ध का अंत नहीं होगा। बल्कि इस बल-प्रयोग की नीति का पर्यवसान मनुष्य के ही नाश में होगा।

राजनेताओं की बात में। आइजनहावर प्रथम महायुद्ध में सबसे बड़ा सेनापति माना गया। युद्ध के बाद सन् १९५६ में वह कहता है। 'हमारे जमाने में युद्ध ऐतिहासिक विपर्यय हो गया है। भविष्य में युद्ध किसी काम का नहीं रहेगा क्योंकि वह एक भस्मासुर हो गया है, जिस पर राष्ट्रों का कुछ नियंत्रण नहीं रहा। हेरल्ड मैकमिलन ने सन् १९५५ में कहा था। केवल अणु-शस्त्रों का ही नहीं परंपरागत तथा आधुनिक सभी शस्त्रों का निःशस्त्रीकरण होना चाहिए। और उसकी देखरेख के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय या अतिराष्ट्रीय संस्था होनी चाहिए। अंततोगत्वा मनुष्य के लिए यही एक मार्ग है।

जागतिक संयोजन

चीन के मामले में बोलते हुए अमृतसर में विनोबा ने कहा कि अब संयोजन भी जागतिक होना चाहिए और व्यवस्था भी जागतिक होनी चाहिए। विश्व-योजना और विश्व-सरकार के सिवा अब कुछ होनेवाला नहीं है। दूसरा एक डिफेन्स मिनिस्टर कह रहा था कि Pooling of Power (शक्ति का संकलन) ही एक मार्ग है। शक्ति-संकलन और सार्वभौमत्व का विसर्जन—इसके बिना कुछ नहीं होनेवाला है। इसके लिए रूस भी तैयार है और अमेरिका भी तैयार है, फिर भी क्यों नहीं हो रहा है? इसलिए नहीं हो रहा है कि अमेरिका समझता है कि इससे लोकतांत्रिक मूल्य नष्ट हो जायेंगे और रूस समझता है कि कहीं पूँजीवादी समाज-व्यवस्था को नयी जिन्दगी प्राप्त न हो जाय। चाऊ एन लाइ भारत आया था तब कह रहा था कि सबको मिलकर साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को खतम करना है। अब उसकी भी तैयारी नहीं है। साम्यवाद में राष्ट्रीय सार्वभौमत्व कोई चीज ही नहीं है। राष्ट्रीय सीमाओं को खतम कर देना उनका सिद्धान्त ही है। फिर भी ये लोग इस पर अमल नहीं करते अपनी-अपनी राष्ट्रीयता रखते हैं। यह एक वैचारिक विरोध

पैदा हुआ। इसका जमघोष और कुरुक्षेत्र एक नहीं हुआ। आज निःशस्त्रीकरण को व्यक्त करनेवाले कोई शुष्क आदर्शवादी व्यवहारविमुख लोग नहीं हैं। वे कहते हैं कि जो लोग मानते हों कि आधुनिक शस्त्रास्त्रों से राष्ट्र निर्भय बन सकता है, वे कल्पनाविहारी हैं। बुद्धि से और तर्क से इसको कोई सिद्ध नहीं कर सकता। अँधेरी रात में सूने मैदान में काली बिल्ली को खोजना जितना कठिन है, उतना ही कठिन है, आज के शस्त्रास्त्रों के नाम से शान्ति को खोजना।

स्नेह-सौख्य

इसके लिए व्यक्तियों में परिवर्तन होना चाहिए। 'व्यक्ति' कहने पर स्वदेशी परदेशी का भेद नहीं रखना चाहिए। मुझे मालूम नहीं कि कोई राष्ट्र या सरकार ऐसी बन सकेगी या नहीं। लेकिन मैं मानता हूँ कि हर राष्ट्र में ऐसे क्रान्तिकारी व्यक्ति काफी संख्या में हो सकते हैं, जो यह कहें कि हमारे लिए कोई विदेशी नहीं है, जिनका हृदय इन राष्ट्रीय सीमाओं को लाँघ सकेगा। कागज पर भी मिटा सकेंगे या नहीं, लेकिन हृदय से मिटा सकेंगे। ऐसे लोगों के लिए विनोबा ने नारा दिया है—'जय जगत्'। उनके लिए समूचा जगत् सौहृदिक क्षेत्र हो गया, अपना कुटुम्ब हो गया। चित्त कौटुम्बिक विश्व के आशय का होना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों के हृदय में केवल सौहार्द और सौमनस्य की भावना रहेगी। ये दोनों हमारे जीवन के चन्द्र और सूर्य होने चाहिए। हम जिस जीवन की रचना करना चाहते हैं, उस सार्वजनिक व्यक्ति के जीवन में सूर्य और चन्द्र होंगे—सौमनस्य और सौहार्द। इसके भिन्न सहचारी गुण होंगे, वे सब ग्रह और नक्षत्र होंगे। इनका सहचारी भाव होगा वात्सल्य। यहाँ आकर धर्मनिष्ठ आस्तिकगण एक स्तर में मिलेंगे। वे लोग पुल बनेंगे और उस पुल का नाम होगा 'स्नेह'। दल-दल के बीच इस प्रकार का स्नेह-सौख्य होना चाहिए।

शान्तिवादियों पर यह आक्षेप है कि शस्त्र और युद्ध नहीं होगा तो

संसार में वीर-वृत्ति नहीं होगी। लेकिन स्वर्गीय के पिता विनोबा और स्वर्गीय शान्तिवादियों से बहुत नाराज थे। हमारे देश में सनातनी जनसंघ आदि सत्ववादी लोग विनोबा और गांधी से नाराज हैं। उनका कहना है कि यह राष्ट्र का पौरुष नष्ट करने का प्रयत्न है। वे मानते हैं कि इन आन्दोलनों से वीर-वृत्ति क्षीण होती है। इस विचार का परामर्श करना जरूरी है।

जीवन-मूल्यों का प्रश्न

एक पहलू मैंने रखा कि युद्ध और शस्त्र जीवन के रक्षण के लिए अब समर्थ नहीं हैं। विरनी हुक का कहना था कि चाहे साम्यवादियों की सत्ता हो जाय लेकिन नि:शस्त्रीकरण होना ही चाहिए। उन्होंने एक सवाल किया—आखिर यह नि:शस्त्रीकरण जान बचाने के लिए ही है, तो भी जान बचाने की कोशिश में क्या इज्जत नहीं बचानी चाहिए? केवल प्राण बचाना है या जीवन के मूल्यों का संरक्षण करना है? बर्ट्रेंड रसेल कहता है कि जीवन के सारे मूल्यों का आधार ही जीवन है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'—इस पहलू से अब तक विचार किया। अब जीवन-मूल्यों को लें।

वीर-वृत्ति

क्या युद्ध और शस्त्र न हों तो वीर-वृत्ति का विकास नहीं हो सकता है? अब जितने भी युद्ध होते हैं सब परोक्ष हैं, प्रत्यक्ष नहीं। वीर-वृत्ति प्रत्यक्ष युद्ध में बढ़ती है। युद्ध जितना परोक्ष होता है, वीर-वृत्ति उतनी क्षीण होती है। वीर-वृत्ति जीवन का एक मूल्य है। हम मानते हैं कि वीर-वृत्ति का विकास अवश्य होना चाहिए। लेकिन ये यन्त्रयुद्ध और कृमि-कीटयुद्ध वीर-वृत्ति का हनन कर देते हैं।

एक जमाना था जब समाज की प्रगति के लिए पूँजीवाद की और सामंतशाही की भी आवश्यकता थी। हम जो मार्क्सवादी सिद्धान्त कहते

है वह इतिहास का भौतिकवादी अवलोकन है, वास्तववादी अवलोकन है। उसके अनुसार कहते हैं कि सामन्तशाही गुलामी से लेकर पूँजीवाद तक जितनी सारी सामाजिक व्यवस्थाएँ रहीं हैं वे अपने-अपने जमाने में प्रगतिशील (Progressive) थीं। साम्यवाद में अभिप्राय और मनोभूमिका दोनों में अन्तर माना जाता है। महत्त्व चित्त के आशय का या इरादे का नहीं Role (पार्ट) का है। इसी तरह हम युद्ध और शस्त्र का एक प्रगतिकारक 'रोल' मानते हैं। इसमें से मनुष्य में उसकी विभूति का विकास होना चाहिए। मनुष्य का विकास उस युद्ध से हो सकता है जिसमें विजिगीषा—जीतने की इच्छा—कम हो। जिस युद्ध में दूसरे को हराने की इच्छा कम होती है, उस युद्ध का नाम 'खेल' है। खेल या Sportsmanship का अर्थ है हार-जीत की परवाह न करना। हार जीत की चिन्ता को बनियापन कहते हैं। बनियापन में नफा-नुकसान का हिसाब है। यह खेल नहीं है। खेल में खिलाड़ी खेल के साथ एकरूप हो जाता है। गीता ने कहा— सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ — क्षत्रिय के लिए लाभ-अलाभ जय-पराजय नहीं है। युद्ध में ही आनन्द आता है उसमें मन लीन है। इस प्रकार का जो युद्ध होता था वह वीर वृत्ति का युद्ध कहलाता था। उसमें छल-प्रपंच कम होता था। उसमें आदमी दिलेर और दिलदार होता था। समुद्र की तरह उदार जिसका दिल हो वही मनुष्य योद्धा माना जाता है।

सांस्कृतिक मूल्य

उसमें से मनुष्यता के गुणों का विकास होता है। एक की तलवार टूटती है तो दूसरा अपनी फेंक देता है। एक का एक हाथ टूट गया तो दूसरा अपना एक हाथ बाँध बैठता है। लड़ाई होगी तो उसके साथ होगी जो मुझसे श्रेष्ठ है जो युद्ध-कला में मुझसे निपुण है। जो कम निपुण होगा उससे लड़ाई करने में युद्ध-कला का विकास नहीं होता। उस्ताद के साथ

कुश्ती लड़ने में कुश्ती-कला बढ़ती है, कमजोर आदमी के साथ लड़ने में न ताकत बढ़ती है न कला बढ़ती है। ऐसे युद्ध मे हार-जीत गौण मानी जाती है। राजाओं और व्यापारियों का युद्ध हार-जीत का युद्ध होता है। वीरपुरुषों का युद्ध हार-जीत का नहीं होता। युद्ध का सांस्कृतिक मूल्य विजिगीषा में नहीं है।

उसमें दूसरा एक महत्त्वपूर्ण नियम था। वह यह कि उसमें अपनी जान का खतरा होना चाहिए। जहाँ अपने प्राणों के लिए भय नहीं वहाँ वीरता नहीं है। यह वीरता का लक्षण है। संकट और प्रतिकूलता में से शक्ति का विकास होता है, प्रतिकूलता का सामना हो सकता है। यह प्रत्यक्ष युद्ध में था। आज के परोक्ष-युद्ध में ये गुण नहीं हैं। इसलिए विज्ञान ने युद्ध की सांस्कृतिक भूमिका का अन्त कर दिया। सांस्कृतिक दृष्टि से युद्ध और शस्त्र उपयोगी नहीं रह गये। प्रतिरक्षण की दृष्टि से तलवार लाठी-काठी का कोई महत्त्व नहीं रह गया। शरीर में कुछ कर्मीकापन लानेवाले खेल की दृष्टि से इनका कुछ महत्त्व रह गया है। संस्कृति और प्रतिरक्षा दोनों दृष्टियों से युद्ध आज व्यर्थ है।

लोग जो कहते हैं कि युद्ध का अन्त होने से वीर-वृत्ति का अन्त हो जायगा—यह आक्षेप अवास्तविक है। आज वीर-वृत्ति के विकास के लिए समाज में अवसर नहीं रह गया है। अब सवाल यह है कि यह अवसर खेल का होगा या समाजोपयोगी काम का? सामाजिक जीवन के साथ इन अवसरों का कोई अनुबन्ध होगा या नहीं? इस फरक को समझ लेना होगा। कोई गौरीशंकर शिखर पर चढ़ रहे हैं। कोई इंग्लिश चानल तैरकर पार करता है। आज तक जो नहीं हुआ वह आज हम कर रहे हैं। लेकिन इसमें से शारीरिक चपलता ही आती है, मनुष्य में वीर-वृत्ति का विकास नहीं होता। छाती पर हाथी चढ़ा लेते हैं चलती मोटर को रोक देते हैं, सब करते हैं लेकिन पुलिसवाले पकड़ने आये तो भागकर घर में छिप जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनमें वीर-वृत्ति का विकास नहीं

हुआ है। वीर-वृत्ति के विकास का अवसर सामाजिक अवसर होता है। डूबे हुए लोगों को बचाना है, ट्रेन-दुर्घटना के पीड़ितों की सेवा है, इसी प्रकार के कई अवसर हैं जिनसे वीर-वृत्ति विकसित हो सकती है। ऐसे सामाजिक अवसरों का भी विकास करना जरूरी है।

एक पुस्तक है— Must men wage war। इसमें यही प्रश्न किया है कि वीर-वृत्ति के विकास के लिए क्या युद्ध आवश्यक है? अन्त में वह कहता है युद्ध की आवश्यकता नहीं है। वीर-वृत्ति का विकास शान्ति-काल में शान्ति के सन्दर्भ में हो सकता है और प्रेम की प्रेरणा से हो सकता है सौहार्द और बन्धुत्व की प्रेरणा से हो सकता है। ऐसी वीर-वृत्ति के आयोजन और अवसर हमें समाज में अधिकाधिक उपस्थित करने चाहिए।

११-८-६ (प्रातः)

अब अहिंसक संगठन और अहिंसक प्रतीकार के सम्बन्ध में कुछ सामान्य विचार कर लेंगे। अहिंसा के आधार पर आर्थिक संगठन कैसा हो? युद्ध के अन्त के बाद समाज में प्रतीकार का कोई स्थान रहेगा? अगर रहेगा तो क्या युद्ध के पर्याय के रूप में रहेगा? यह सारा विचार यहीं से हम शुरू करते हैं उसका आरम्भ यह है कि आखिर संगठन किस-लिए है? जिस उद्देश्य के लिए हम संगठन करना चाहते हैं वह अगर उस संगठन से सिद्ध नहीं होता हो या उस दिशा में प्रयत्न न होती हो तो क्या हमारी प्रगति उस दिशा में होती है? यह उसकी कसौटी है। गांधीजी ने हम लोगों के सामने एक सूत्र रखा—Organization is the test of non-violence (संगठन से हमारी अहिंसा की परीक्षा होती है।) संगठन में अगर अहिंसा आ सकती है, तो हम मानेंगे कि अहिंसा की सफलता है। यों इसमें कुछ विरोध मालूम होता है कि संगठन अहिंसक हो ही नहीं सकता। कुछ लोग मानते हैं कि अहिंसा जब संगठन में मिल जाती है तब वह शुद्ध अहिंसा नहीं होती उसमें मिलावट हो जाती है उसमें कुछ मलिनता आ जाती है। फिर भी क्या संगठन हमें अहिंसा की दिशा में ले जा सकेगा? हमने निःशस्त्रीकरण के लिए एक कसौटी मानी कि उससे हमारा जीवन अधिक व्यापक और अधिक सभ्य बनेगा। जीवन में व्यापकता और सभ्यता अधिक आनी चाहिए। आज संगठन मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है। इसलिए उसमें व्यापकता कम आती है। मनुष्य संगठन में कुछ सुरक्षितता चाहता है संगठन को अपने संरक्षण का साधन समझता है। जिस प्रतिरक्षण के कारण हमको सुरक्षित जीवन मिलता है, उस सुरक्षितता में हमारी

स्वतन्त्रता क्षीण हो जाती है, पत्थर की दीवारों में और तालों में बन्द हो जाती है। प्रतिरक्षा मनुष्य को मनुष्य से अलग कर देती है, मनुष्यों के बीच एक दीवार बन जाती है। संस्थाएँ और संगठन मनुष्य के चारों ओर एक बाड़ बना देते हैं, एक-दूसरे को अलग कर देते हैं। इसलिए संस्थाओं का यह प्रयोजन नहीं होना चाहिए कि वे मनुष्य के जीवन को यों सुरक्षित बना दें।

पर्याप्तता और अपरिग्रह

हमारा जीवन अधिक व्यापक होना चाहिए और इस व्यापकता में सामरस्य और धन्यता का अनुभव होना चाहिए। इस प्रकार के जीवन के लिए कुछ भौतिक सुख की आवश्यकता है, ऐसी भौतिक स्थिति चाहिए, जहाँ मनुष्य बहुत दीन और दरिद्र न हो। लोगों ने कभी एक भौतिक स्थिति की तीन अवस्थाओं का विचार किया है—एक विपन्नता दरिद्रता, दूसरी पर्याप्तता जितना चाहिए उतना, और तीसरी विपुलता जितना चाहिए उससे बहुत अधिक। इन तीनों की कल्पना की गयी है, प्रतिपादन भी। संस्कृत के एक सुभाषित में कहा गया है—दरिद्रता ही धन्य है। क्योंकि सभी गुणों का विकास दरिद्रता में होता है और जितने दुर्गुण हैं वे सब धन के साथ आते हैं। पुराणकारों ने लक्ष्मी का वाहन उल्लू बताया है। यह इस बात का संकेत है कि संपत्ति मूर्ख के पास होती है। ऐसे बड़ा सिद्धान्त मानने की आवश्यकता नहीं है यह एक धारणा है। ये तीनों अवस्थाएँ अपरिग्रह नहीं हैं अपरिग्रह बिलकुल अलग स्थिति है। यह न तो दीनता है न अभाव। यह एक सामाजिक मूल्य है। पर्याप्तता का प्रतिपादन किया गया है—युक्त भोग। भगवद्गीता में कहा है कि

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

आहार [illegible] पर्याप्त हो। क्योंकि बिलकुल न खाने-

खाता भी योगी नहीं हो सकता। युक्त आहार, युक्त विहार, युक्त चेष्टा, युक्त कर्म आदि में जो युक्त है वही 'पर्याप्त' है, 'परिमित' है, योग है।

आत्म-मर्यादा

जिस मनुष्य में पर्याप्तता है, उसका चित्त और शरीर दोनों स्वस्थ रहते हैं। जिसे हम पर्याप्त कहते हैं उसे ही युक्त कहा है। युक्त शब्द को हिन्दी में 'उपयुक्त' के अर्थ में काम में लेते हैं। उपयुक्त का अर्थ है Proper मनुष्य के जीवन के लिए अनुकूल। इसे ही पर्याप्तता कहते हैं। Surfeit का अर्थ है अतिसम्पन्नता। पर्याप्त शब्द का अर्थ है, वस्तु का अपव्यय मत करो, हमेशा वस्तु की आकांक्षा मत करो। यहाँ आकांक्षा याने लोभ। मा गृधः। लोभ न हो। लेकिन यहाँ surfeit (अतिसंपन्नता) में यह अर्थ आता है कि वस्तु इतनी विपुल होनी चाहिए, ताकि संग्रह की आकांक्षा ही न रहे। इस प्रकार से दोनों का प्रतिपादन किया है। मान पानी का एक छोटा-सा झरना आपके घर के नजदीक से बह रहा है। तब क्या पानी के लिए झगड़ा होगा? भरकर रखने के लिए कुम्भ की भी जरूरत नहीं है। हवा का संग्रह करने की भी आवश्यकता नहीं है। संग्रह करने की जब आवश्यकता नहीं रहेगी तब प्रतियोगिता नहीं रहेगी, झगड़ा नहीं होगा। अब इसमें क्या-क्या दोष है यह विचार करें। सबसे बड़ा दोष यह कहा जाता है कि मनुष्य वस्तुओं के अधीन बन जाता है। मनुष्य का जीवन जितना वस्तुतंत्र होगा उतना आत्मतंत्र नहीं होगा। आत्मतंत्रता जितनी घटती है, उतना वह परवश हो जाता है। 'सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखम्' यह विचार आज अर्थशास्त्र में भी आ गया है। हम ऐसा समाज चाहते हैं जिसमें वस्तुओं का उपयोग पर्याप्त होना चाहिए। जितना चाहिए उससे कम नहीं, उससे अधिक भी नहीं। इसकी मात्रा में अन्तर हो सकता है, लेकिन हर अवस्था में

को होगा वह पर्याप्त होगा। ऐसे समाज को प्रतिष्ठित समाज कहते हैं। ऐसे प्रतिष्ठित समाज में मुक्त परिश्रम है मुक्त उपभोग है। लेकिन संगठन फिर किसलिए होगा? हमने संकल्प किया है कि जीवन व्यापक और भव्य होगा। जीवन केवल सुखी और संपन्न होगा यही नहीं व्यापक भी होना चाहिए और भव्य भी होना चाहिए। तब वह परिपूर्ण समाज बनेगा। वह समाज सुप्रतिष्ठित समाज माना जायगा। ऐसे समाज में मनुष्य का आत्मसम्मान बढ़ता है आत्ममर्यादा बढ़ती है। मनुष्य की प्रामाणिकता ही उसकी आत्ममर्यादा है।

स्वेच्छा से विपत्ति को वरें

ऐसे समाज के लिए संस्थाओं का क्या उपयोग होगा? पहले संस्थाओं के प्रयोजन पर विचार करें। समाज में आवश्यक की यानी चीजों की कमी है भोग्य वस्तुओं का दुर्भिक्ष है अतः प्रारम्भ अभाव की बाँट लेने से (Sharing of want से) होना चाहिए। विनोबाजी के काम पर कइयों ने यही आक्षेप किया था कि यह गरीबी बाँटने का (Sharing of poverty का) काम है। हम मानते हैं कि यह आक्षेप नहीं प्रशंसा है। जिस समाज में दुर्भिक्ष है वहाँ सभ्यता का आरम्भ दुर्भिक्ष के संविभाजन से ही होता है। हम भी उसमें शामिल होना चाहिए। स्वयंप्रेरित गरीबी (Voluntary poverty) ही सभ्यता है। गांधी ने यही किया। दूसरे को मिल नहीं रहा है इसलिए वह स्वायत्त दारिद्र्य अपनाता है। सबको मिलना चाहिए इसके लिए हम कोशिश करें अपनी सारी शक्ति लगायें लेकिन जब तक सबको नहीं मिलता तब तक मेरे हृदय की व्यथा मेरे आचरण में प्रकट होना चाहिए। इसलिए अभाव के संविभाजन से शुरू होना चाहिए। समाज [illegible] [illegible] में [illegible] में दूसरों की स्थिति में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं तो समाज-क्रान्ति में हिंसा और [illegible] [illegible]

से पूछते हैं कि क्या अमीर कभी अपनी मर्जी से गरीब को अपनी अमीरी में शामिल करेगा? वे ही लोग दूसरी तरफ जाकर कहते हैं कि जो सम्पन्न राष्ट्र हैं, उन्हीं को सबसे पहले निःशस्त्रीकरण करना चाहिए। आज की परिस्थिति में इसकी आवश्यकता है। ऐतिहासिक नियति है। जहाँ हम कहते हैं कि लोकतन्त्र में से पूँजीवाद चला जाय, समाजवाद आवे और साम्यवाद में लोकतन्त्र आवे, यह भी परिस्थिति की आवश्यकता है। यहाँ जैसे शस्त्र-संन्यास की आवश्यकता है, वैसे ही सामाजिक क्षेत्र में विपुलता के विसर्जन की और संविभाजन की आवश्यकता है।

सम्पत्तिदान का आशय

आज सम्पन्न राष्ट्र यदि असम्पन्न राष्ट्रों को अपनी सम्पत्ति का हिस्सा नहीं देंगे तो दोनों के लिए इस परिस्थिति में जीना असम्भव हो जाता है। यह जो दान-धर्म चल रहा है, यह ऐहिक सुस्थिति के लिए है, इसे विपुलता का संविभाजन ही कहना चाहिए। फिर भी दान अलग चीज है, विपुलता का संविभाजन अलग। संस्थाएँ ऐसी होनी चाहिएँ, जो विपुलता का बाँट दें। कर-निर्धारण (Taxation) में भी ऐसी ही नीति रखनी होगी। लेकिन संविभाजन स्वायत्त होना चाहिए। सार्वजनिक और लोकप्रेरित संस्थाओं में यह नीति होनी चाहिए। अब यह धर्माचार नहीं है, स्वर्ग प्राप्ति के लिए या उपकार करने के लिए नहीं है, यह सामाजिक क्रान्ति का साधन है। सम्पत्तिदान की कल्पना में असल में यही विचार है। हम कर लादना नहीं चाहते, दान-धर्म नहीं चाहते, तो सम्पत्ति-विभाजन का एक ही मार्ग रह गया। समाज में दुःख और सुख दोनों का संविभाजन होना चाहिए। 'उत्सवे व्यसने चैव'—उत्सव और व्यसन में जो साथ रहता है वह मित्र कहलाता है। 'राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।' (बन्धु वह है जो दरबार में और श्मशान में भी साथ देता है।) लेकिन इतना काफी नहीं है। हम चाहते हैं कि सब उत्सवों की

माना जायगा। यह श्रम-यज्ञ का संकेत होगा। संकेत हमेशा क्रियात्मक होना चाहिए। उसका सामाजिक आवश्यकताओं के साथ अनुबन्ध होना चाहिए। जो समाज की किसी आवश्यकता के साथ जुड़ा हुआ हो उस संकेत में सजीवता आती है। वह केवल विधात्मक न हो क्रियात्मक हो। कांग्रेस में भी यह संकेत गांधी ने दाखिल किया कि हरएक को कुछ-न-कुछ काम करना है। उसने कहा कि मतदान के तौर पर सूत दो। गांधी की इसमें विशिष्ट भूमिका यह थी कि हमें श्रम और विश्राम दोनों में एक-दूसरे के साथ शामिल होना चाहिए। लोगों ने कहा कि यह 'नारा' है गांधी ने कहा—नारा नहीं उपकरण है। विनोबा ने इसको 'अभिज्ञा' कहा। अभिज्ञा यानी Token जिससे पहचाना जा सके। प्रतीक ऐसा हो जो स्मरण दिलाता हो। जैसे शाकुंतल में तथा रामायण में अँगूठी है। हमारी मानवता का एक चिह्न (Credential) होना चाहिए।

संस्थाओं की आसुरी प्रवृत्ति

आज मानव आर्थिक पुरुष नहीं रहा है संस्थात्मक बन गया है। (Economic man नहीं Organizational man बना है।) यह आज का नया संस्करण है। इसके पहले भी बहुत-से संस्करण हुए हैं। लेकिन संस्था में से यह जो संस्करण (Orientation) हुआ है उसमें दो चीज हैं। मनोविज्ञान में एक शब्द है क्लेप्टोमानिया यह एक तरह की मानसिक व्याधि का नाम है। दूसरी एक मानसिक व्याधि है मेगलोमानिया। इसका मतलब है विशालता विराट्‌प्रियता। हर चीज को इतना विशाल बनाने की होती है। हरएक में अजस्रता और प्रचण्डता का मोह होता है। विनोबा ने एक बार इसे आसुरी प्रवृत्ति कहा। क्योंकि असुरों में आकार का आकर्षण अधिक है। वास्तव में आसुरी का मतलब है प्रचण्डता। दूसरा है क्लेप्टोमानिया यानी संग्रहशीलता। सब कुछ जमा करते जाने की प्रवृत्ति संग्रहोन्माद। (Grabbing and hoarding

दूसरी बात संस्थाओं में व्यवस्थापकों का प्रमुख (ब्यूरोक्रेसी) नहीं होना चाहिए। दो व्यक्तियों ने इसके खिलाफ आवाज उठायी। सबसे पहले बर्नहैम (Burnham) नामक लेखक ने एक किताब लिखी The Managerial Society (व्यवस्थापकीय समाज)। समाजवाद और साम्यवाद को चेतावनी देने की दृष्टि से उसने कहा कि समाजवादी और साम्यवादी समाज में उत्पादन का समाजीकरण होगा। लेकिन उसमें एक बहुत बड़ा खतरा यह है कि उसमें से 'व्यवस्थापकशाही' आयेगी। इसके बाद एक दूसरी चेतावनी इससे कहीं अधिक उत्कट रूप में आयी। जिलास ने लिखा है The New Class (नया वर्ग)। उसमें उसने बताया कि अब व्यवस्थापक लोग होंगे यही नहीं बल्कि उनके हाथ में सत्ता और सम्पत्ति दोनों एक साथ होगी। पूँजीपतियों के हाथ में तो केवल सम्पत्ति रही है, ये जो साम्यवादी तानाशाह होंगे इनके हाथ में सम्पत्ति के साथ सत्ता भी होगी। मानव सम्पत्ति-मात्र से ही पतित हो जाता है फिर सत्ता और सम्पत्ति दोनों एक जगह होगी तो वहाँ कितनी मनुष्यता रहेगी ?

यन्त्रों का त्रिविध आकर्षण

क्या ये सबके सब अति-मानव हैं ? Super men का भी एक सिद्धांत है। वह कहता है कि दुनिया में कुछ लोग मालिक बनने के लिए ही पैदा हुए हैं और कुछ लोग गुलाम बनने के लिए ही हैं। जो मालिक बनने के लिए हैं वे सूपर मेन (Super men) हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन नीत्शे ने किया। यहूदियों के बारे में कहा गया था कि वे Chosen few (चुने हुए) हैं। इनका विलक्षण सिद्धान्त है। जो इनके धर्म के अनुयायी नहीं हैं उन पर यदि विश्वास किया जाता है तो वे विश्वास करनेवाले लोग ईश्वर का द्रोह करते हैं। तो ऐसे लोगों के हाथ में सत्ता और सम्पत्ति दोनों इकट्ठी हो जाती है तो खतरा निश्चित ही है। इसके खिलाफ एक पुस्तक प्रकाशित हुई—Proletarian or Burgeois।

अभी जो नया युग बना है उसमें बुर्जुआ के सारे दुर्गुणों की चरम सीमा हो गयी है। इसमें तीन चीजें हैं—यन्त्रीकरण (Mechanization) विवेकीकरण (Rationalization) और स्वयं चालन (Automation)। यंत्रीकरण का सबसे बड़ा आकर्षण है श्रम-मुक्ति। श्रम से बचाने का मंत्र लेकर यंत्र आया। शुरू में ही मार्क्स ने यन्त्रों का विरोध किया जैसे आज Rationalization का विरोध साम्यवादी करते हैं। रैशनलाइजेशन के अनुसार अनेक लोगों ने अनेक तरह किये हैं। उसका अर्थ है विवेकीकरण। यानी श्रम मुफ्त में नहीं करना चाहिए श्रम की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए यानी एक श्रम दो बार या एक श्रम दो जगह नहीं होना चाहिए यंत्र-शक्ति और श्रम-शक्ति का अपव्यय नहीं होना चाहिए—इसका नाम है रैशनलाइजेशन। इन दोनों के बाद का कदम आटोमेशन है। यंत्र ऐसा हो जो अपने में स्वयं-पूर्ण हो जिसके लिए चालक की आवश्यकता न हो यन्त्र की सम्भाल न करनी पड़े—यह आटोमेशन है। ये तीनों चीजें आ रही हैं।

यंत्र विशारदों की सत्ता

इसमें से आयेगी Technocracy यानी यन्त्र-विशारदों की सत्ता। जो लोग यन्त्रों को जानते हैं वे आगे के मालिक होंगे उनकी सत्ता चलेगी। यन्त्र जितना सूक्ष्म और कुशल होगा उतनी यन्त्र-विशारदों की सत्ता बढ़ेगी। सन् १९५९ में Landmarks of Tomorrow नाम की एक पुस्तक निकली। इसमें यन्त्र-विज्ञान की आधुनिक पद्धतियों की जानकारी है। अब देखना यह है कि इन सबमें मनुष्यता की सत्ता कैसे बढ़े समाज [illegible] कैसे बने? लिखा गया है कि "ऐसा लगता आज यह है कि संस्थाओं की तरफ से मनुष्य की ओर मुड़ रहा है। अब मेरे लिए इकाई 'मनुष्य' है संस्था नहीं। मेरे लिए समाज का मूल घटक (यूनिट) संस्था नहीं मनुष्य होगा।" यहाँ लेखक ने मनुष्य अधिकार का

व्यक्ति नहीं है। यहाँ साधारण मनुष्य की विभूति ही केन्द्र है। समाज का सदस्य मानव है और समाज के सदस्य के रूप में जो परिपूर्ण मानव है वही समाज की केन्द्रीय विभूति है। इस अर्थ में विनोबा कह रहे हैं कि यह मेरा नया मोड़ (New Orientation) है कि अब मैं व्यक्तियों से सम्पर्क रखूँगा संस्थाओं से रिपोर्ट नहीं माँगूँगा।

यन्त्र-विज्ञानवादों की सत्ता और व्यवस्थापक सत्तावाद—दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। आज की संस्थाओं का जैसा स्वरूप बना है और यंत्र-विज्ञान आज जितना विकसित हो गया है इसे क्या मिटाया नहीं जा सकता ? अणु-युग को क्या रद्द नहीं कर सकते ? यदि अणु-युग को संस्थाओं को रद्द नहीं कर सकते तो मनुष्य अपनी संस्था का कैदी बन जायगा और इन संस्थाओं में निरीक्षक होंगे काम लेनेवाले संचालक होंगे।

विशालता म एक आकर्षण है। इससे मनुष्य की वृत्ति कुछ विशाल होती है। छोटी संस्था में दिल छोटा होता है। बड़ी संस्था में दिल बड़ा रहता है। यह हमेशा नहीं होता। कभी-कभी मनुष्य खो भी जाता है। रूजवेल्ट ने कहा था कि शान्तिवादी लोग हमारे स्वभाव की तीक्ष्णता को ही खतम कर देते हैं। बहादुरी के लिए युद्ध की उत्तेजना आवश्यक है। यन्त्र का एक आकर्षण यह है।

यन्त्र का दूसरा एक आकर्षण है, जिसे सांस्कृतिक आकर्षण कहते हैं। युद्ध के सांस्कृतिक आकर्षण की बात पहले आयी है। अब यंत्र के सांस्कृतिक आकर्षण की बात देखनी है। जो आदमी यन्त्र चलाता है काम में लेता है उसमें अधिक कुशलता और बुद्धि की आवश्यकता होगी। इसलिए वह व्यक्ति समाज में अधिक प्रतिष्ठित होता है। आज समाज में यन्त्रविदों की अधिक प्रतिष्ठा है। यह सांस्कृतिक आकर्षण है। इसलिए समाजवादी कहते हैं कि यन्त्रों का पात्र (रोल) या भूमिका प्रगतिकारक है। लेकिन इसकी एक हद है। यदि कल अपने-आप चलनेवाली मोटर या मशीन जिसमें दिमाग बिलकुल न लगाना पड़े तो उसकी भूमिका बदल जाती

है। सबसे अच्छा यंत्र वह है जो सबका पूरा है बिगाड़ना चाहे तो भी जिसे बिगाड़ न सकें। यहीं से मनुष्य आटोमेशन की ओर जाता है। यंत्र की सांस्कृतिक भूमिका एक मर्यादा से आगे समाप्त हो जाती है। फिर वह कौटुम्बिक जीवन के विकास के लिए उपयोगी नहीं होता। जिसे हमने Sharing (संविभाजन) कहा उस प्रकार के सामुदायिक सह जीवन के लिए सहायक नहीं रहता। ●

११-५-६ (मध्याह्न)

अहिंसक संगठन का आधार   २०

क्रान्ति की कला

जिन मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर अहिंसक संगठन हो सकता है, उनके उद्देश्यों का विचार चल रहा है। उसमें मुख्य विचार यह है कि मनुष्य को समाज में जिन बुनियादों पर प्रतिष्ठा मिलती है उन आधारों का आमूलाग्र बदल देना है। यह काम संस्थाओं को करना होता है। संगीत में जिस प्रकार राग होता है उसी प्रकार समाज में भी एक राग (Tune) होता है। समाज का संगठन वृन्दगान की तरह बनता है। जिसमें ताल, स्वर, ध्वनि, गंभीरता आदि सबमें एक संवाद (एकतानता) होता है। इसलिए हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि रचनात्मक क्रान्ति केवल एक कला ही नहीं है बल्कि ललितकला है। कला में और ललित-कला में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि ललितकला में एक संवाद होता है एक सुसंगति होती है। इस प्रकार का संवादी समाज अगर हम स्थापित करना चाहते हैं तो उसमें एक राग (Tune) चाहिए, उसका एक ध्वनि (Tone) भी चाहिए। ध्वनि का भी असर होता है। मनुष्य जिस आवाज में बोलता है उसका भी परिणाम होता है। ध्वनि अगर मधुर है तो उसका परिणाम भी मधुर होता है।

बर्नार्ड शा ने Back to M thusala में एक भरतवाक्य लिखा है जिसमें सवाल उठाया है कि दुनिया में जितने भी महान् क्रान्तिकारी हुए, समाज के महान् उपकारकर्ता हुए, उनको समाज ने सजा क्यों दी? उनका विरोध क्यों किया? कभी सूली पर चढ़ाया, कभी विष का प्याला पिलाया, कभी जला डाला तो कभी गोली से मार दिया, फिर बाद में उन्हें संत बना दिया। समाज ने अपने उपकारकर्ताओं के साथ ऐसा विरोध

क्यों किया? बर्नार्ड शा ने इसका जवाब दिया है कि ये दो सामाजिक मूल्यों के प्रवर्तक महापुरुष थे। इन लोगों में कला का अभाव था। ये लोग अपनी बात कलात्मक ढंग से कहना नहीं जानते थे। उन्होंने कुदाल को कुदाल कहा, लेकिन उसे एक आयताकार औजार नहीं कहा। वे कुछ अधिक स्पष्टवादी थे, इसलिए इनके शब्दों का परिणाम पहले समाज पर आघात का हुआ। सुकरात ने एथेन्सवासियों से कहा कि जानवरों को काटकर सतानेवाली मक्खी (Gadfly) बनकर आया हूँ। जो मक्खी जानवर को काटती है, उसको काटने की जानवर कोशिश करते हैं। समाज को बचाने के लिए जितने लोग आये, उनके शब्दों में अगर कलात्मकता होगी, 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' इस नीति-वाक्य के अनुसार सत्यनिष्ठा के साथ अगर स्नेह की माधुरी उनकी वाणी में प्रकट हुई होगी, तो उसका परिणाम भिन्न ही होगा। हृदय में करुणा हो और वाणी में मधुरता हो, यह जरूरी है। यह ध्वनि (Tone) कहलाता है।

मूलगामित्व का महत्त्व

और तीसरी एक बात है प्रवृत्ति का सुधार। नदी के प्रवाह की दिशा क्या है, इसका भी महत्त्व होता है। बेंगलोर और मैसूर के बीच पश्चिमवाहिनी है। उसका महत्त्व है। गंगा उत्तरवाहिनी हो तो अधिक पवित्र है, वैसे ही कृष्णा गोदावरी कावेरी यदि पश्चिम की तरफ बहती हों तो अधिक पवित्र हैं। क्योंकि सब वे सामने पूर्व की तरफ बहती हैं। नदी का यह प्रवाह समुद्र की तरफ है। जब वह उल्टी दिशा में मुड़ती है, तो लोग समझते हैं कि यह बात में एक विशेष घटना है। इसी तरह मनुष्य को भी अपना उद्गम की तरफ मोड़ना है।

मनुष्य का ऊर्ध्वीकरण

एक क्रम होता है। आगे का क्रम मानवता की दिशा में ही होना चाहिए। यंत्रणाओं के अंदर स्टीम रोलर की तरह मनुष्य पिस रहा है

व्यक्ति की सत्त्व-हानि हो रही है। समूह में मनुष्य खो ही गया है। संस्थाओं में औसत आदमी नहीं है। अब यह औसत मनुष्य नहीं होता है, वह एक माप है। मनुष्य कोई कपड़ा नहीं थर्मामीटर नहीं। माप अपने में सत्य नहीं है। अगर पूछा जाय कि इस देश के मनुष्य की औसत आयु कितनी है, तो लोग कहेंगे कि पहले तो २२-२३ साल तक की आयु थी अब लगभग २५ से ३ तक हो गयी है। तो बहुत सारे बूढ़ों की आयु कलम हो जानी चाहिए, जो औसत से ज्यादा आयु के हो गये हैं। इसलिए ये तीनों अलग-अलग चीज है। यद्यपि ये वैज्ञानिक ही हैं फिर भी विज्ञान में भी कुछ कल्पना होती है। कुछ कल्पनाएँ मनुष्य के जीवन में हिसाब के लिए बन गयी है लेकिन ये आदर्श स्थिर नहीं हैं। साधारण मनुष्य (Common man) स्थिर नहीं है। साहित्य के बारे में कहा गया है कि वह सड़क के आदमी (Man on the street) का होना चाहिए। यह सड़क का आदमी कौन है—सड़क पर बैठा हुआ या सड़क पर चलता हुआ ? उसका मुँह किस तरफ है ? उसकी कोई मंजिल है ? कोई मुकाम है ? हमने Man on the street एक नारा बना दिया है और इसी तरह तीन नारे और बना दिये कि साधारण मनुष्य औसत मनुष्य और केन्द्रीय मनुष्य। इनमें से कोई स्थिर नहीं है। मनुष्य की मूलभूत विकासशील विभूति की हानि नहीं होनी चाहिए।

हरएक मनुष्य अपने में पूर्ण है (Integral personality) है, वह पूर्ण अंग है अंश नहीं समाज का वह एक पूरा अंग है। इसलिए समाज का संगठन ऐसा होना चाहिए जिसमें मनुष्य के व्यक्तिगत अभिक्रम और व्यक्तिगत विकास के लिए मौका हो। यानी मनुष्य की अपनी स्वयं प्रेरणा और स्वय-प्रवृत्ति के लिए समाज में अवसर रहें। मनुष्य में जो विशिष्ट गुण हैं कलात्मक पौरुष है कारीगरी की शक्ति है उसका विकास होना चाहिए। नहीं तो मनुष्य की विशिष्टता का अंत हो जायगा। हर व्यक्ति म कुछ ऐसे लक्षण और कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जो उसको दूसरे

आदमी से अलग कर देती है। यह उसका व्यक्तित्व है। इन विविध गुणों के विकास के लिए अवसर होना चाहिए।

मनुष्य की विशेषता

इसका आशय क्या है? क्या एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का स्थान ले सकता है? टाइप राइटर यदि आटोमैटिक हो जाय तो फिर टाइप करना सीखने की जरूरत नहीं रहेगी। क्योंकि वह फूल-प्रूफ (Fullproof) है। आज चार साल का बच्चा रेडियो चला सकता है। यन्त्र जितना परिपूर्ण होगा मानव उतना अनुपम होगा। मैं विज्ञान का या आधुनिक यन्त्र-विज्ञान का विरोधी नहीं हूँ मैं मनुष्य के पक्ष में हूँ। हम इतना ही चाहते हैं कि मनुष्य निष्क्रिय (Functionless) न बने। क्योंकि मनुष्य अगर अपनी विशेषता दूसरे मनुष्य को पशु को या यन्त्र को दे देता है तो अपना महत्त्व खो देता है। मनुष्य के महत्त्व की हानि नहीं होनी चाहिए। यह मूलभूत सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विचार है। इसे हमें गहराई से सोचना चाहिए।

विकास का आधार

मुख्य प्रश्न यह है कि मनुष्य के अवयवों की शक्ति बढ़ेगी या कम होगी। मनुष्य की कला, इंद्रियों की शक्ति और सूक्ष्मता बढ़ेगी या नहीं? समाज का संयोजन ऐसा होना चाहिए, जिसमें व्यक्तियों की शक्ति बढ़ती हो। नूपुर को देखने की, मन की, दिमाग की समझने की सभी शक्तियाँ बढ़नी चाहिए। यह संस्कृति है। विज्ञान का सारा संयोजन संस्कृति के विकास के लिए होना चाहिए। विस्तार के लिए विकास अलग चीज है और सांस्कृतिक विकास अलग। इंद्रियों की शक्ति का विकास सामाजिक मूल्यों के रूप में होना आवश्यक है। दुनिया में से किसी एक की भी शक्ति नष्ट हो जाती है या मारी जाती है, तो वह काम का नहीं।

कुटुम्ब-संस्था का प्रश्न

संगठन और संयोजन दोनों समान रूप से आच्छादित (Overlap-

ping) है। संयोजन में भाव इतना ही सोचते हैं कि वह भावश्यकताओं की पूर्ति के लिए हो या विपुलता के लिए। हम कहते हैं कि इसमें दो चीजें और जोड़ दी जायें—पारस्परिकता (Reciprocity) और संस्कृति। संयोजन ऐसे वैभव के लिए हो जिसमें पारस्परिकता है। राजाजी जैसे आदि कुछ लोग कह रहे हैं कि आज जो संगठन कर रहे हैं, उसमें कुटुम्ब-संस्था पर कुठाराघात हो रहा है। परशुराम की तरह अपनी माँ को मार रहे हैं। दूसरी तरफ हम कहते हैं कि गाँव का भी कुटुम्ब बनेगा विश्व का भी कुटुम्ब बनेगा। हम विश्व-समूह की बात नहीं करते हैं विश्व का मानवीय कुटुम्ब बनाना चाहते हैं। आज तक जितने क्रान्तिकारी हुए वे सब कुटुम्ब संस्था के विरोध में खड़े हुए। समाजवादियों ने और साम्यवादियों ने भी कुटुम्ब-संस्था से बड़ा विद्रोह किया है। लेकिन आज समाजवाद और साम्यवाद दोनों में कुटुम्ब-संस्था का महत्त्व है। पहले वह नहीं था आज कहते हैं कि कम्यून और कलेक्टिव के बावजूद कुटुम्ब का महत्त्व है। इसे वे पवित्र मानते हैं लेकिन एक उच्च स्तर (Higher level) पर। साम्यवादियों की अपनी एक परिभाषा है। उसके अनुसार वे कहते हैं कि एक उच्च स्तर पर कुटुम्ब-संस्था है। अब यह उच्च स्तर की कुटुम्ब-संस्था क्या है ?

हमारे संयुक्त कुटुम्ब

यहाँ आरम्भ में संयुक्त-कुटुम्ब-पद्धति थी। एक-एक घर में सौ-सौ लोग रहते थे। हमने उन कुटुम्बों को तोड़ा। जितने समाज सुधारक हमारे यहाँ हुए सबने इस संयुक्त-कुटुम्ब-पद्धति का विरोध किया। वह कुटुम्ब संस्था एक स्टीम रोलर बन गयी थी। कुटुम्ब में रहने वाले मनुष्य का कुचल रही थी। कुटुम्ब का जो मुख्य पुरुष होता था वह चाहता था कि सब मरता था मार सकता था। Mayor of Castor bridge और Tess नामक दो उपन्यास हैं।......वे दोनों अपराधी हैं। वे

कोई ऊँचे दर्जे के नहीं माने जाते थे। लेकिन टेस उपन्यास के नीचे लिखा है—A woman of character और Mayor of Casterbridge को A man of character कहा है। दोनों का वर्णन एक चारित्र्यवान् पुरुष और चारित्र्यवान् स्त्री के रूप में किया है, लेकिन चारित्र्य होते हुए भी वे अपनी स्त्री को बेच सकते थे। धर्मराज के लिए हर समस्या एक धर्म-संकट के रूप में आती थी। वह जुए में द्रौपदी को हारा। इसमें सत्ता मुख्य पुरुष की होती है। इसमें मनुष्य की प्रतिष्ठा (Human dignity) नहीं रही है। अब इसमें एक विरोध (conflict) पैदा हुआ।

स्त्री का स्थान

आज हमने हर मनुष्य को नागरिक माना है। एक आदमी एक वोट। कानून के सामने राजा-रंक पिता-पुत्र सास-बहू सब समान हैं। आज अगर पिता पुत्र की हत्या करता है तो फाँसी होती है माँ अगर अपने नन्हें बेटे की हत्या करती है तो फाँसी होती है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा (Dignity of Individual) और कानून व संविधान की दृष्टि से सबकी समानता आज के सामाजिक मूल्य हैं। फिर भी लोग दूसरे स्तर से सोच रहे हैं। विनोबा और जयप्रकाशजी भी सोचते रहे हैं कि अब व्यक्ति के लिए वोट नहीं होना चाहिए, कुटुम्ब के लिए होना चाहिए। यहाँ इस पर विचार नहीं करेंगे। समाज में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का और व्यक्ति की प्रतिष्ठा का मूल्य कानून की समानता के कारण स्थापित हो गया है। धर्म में स्त्री की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। विधवा को किसी धार्मिक विधि का अधिकार नहीं है। अविवाहित स्त्री यानी कुमारी के लिए धार्मिक विधि नहीं है। स्त्री के लिए जितनी धार्मिक विधियाँ हैं और जितने धार्मिक संस्कार हैं सब पुरुष के द्वारा हैं। हमारी कुटुम्ब-संस्था का आधार सम्पत्ति और पिण्डोदक-क्रिया है। कुटुम्ब

दोषी को दण्ड देना चाहिए। संस्थाओं में क्या ये दोष नहीं हैं? होंगे लेकिन खोजबीन करने के लिए आपके पास वक्त नहीं है। तो क्या सरकार में खोज करने के लिए वक्त मिल गया? यह आत्म-प्रतारणा है। इस आत्म-प्रतारणा से समाज नरक में जाता है, समाज की दुर्गति होती है। असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता। —वे असुर नामक लोक हैं जहाँ घना अन्धकार छाया हुआ है। वहाँ जानेवाले कौन हैं? 'ये के च आत्महनो जना' —आत्मा का वंचन करनेवाले आत्मा का हनन करनेवाले आत्मघातक लोग जो कि आत्म प्रतारणा करते हैं। लोग हमसे पूछते हैं कि आप लोगों का लेबर यूनियन या विद्यार्थियों का यूनियन कभी नहीं बनेगा? अवश्य बनेगा लेकिन ऐसे संगठनों का पहला लक्ष्य यह होगा कि वे समाज में से जिन बुराइयों को मिटाना चाहते हैं वे उनके भीतर नहीं रहेंगी। एक रिक्शेवाले को कोट-पतलून वाले बाबू ने तमाचा मार दिया। रिक्शावालों ने मुझे बुलाया और कहा कि आप हमारे इस चुनाव-क्षेत्र के प्रतिनिधि हैं। वे हमें मार रहे हैं वे यह [illegible] है। हमारा यदि अपराध है तो हम क्षमा चाहते हैं, यदि अपराध उनका है तो वे हमसे क्षमा माँगें। आप हमें न्याय दिलाइये। मैंने कहा कि मैं उस बाबू का गुस्सा सह सकता हूँ और अगर तुम उनको तमाचा लगाना चाहो तो लगा भी सकते हो। लेकिन एक शर्त है और वह यह कि [illegible] रिक्शावाला किसी स्त्री के साथ दुर्व्यवहार [illegible] नियम से ही उसकी सजा होनी चाहिए।" तब वह [illegible] बढ़ाया नहीं।

इस किसी भूमिहीनों का संगठन होता है। एक बार मैंने उन लोगों से पूछा कि 'आप भूमिहीनों का संगठन करना चाहते हैं तो क्या आपमें इतना विश्वास है कि आप भूमि की मालकियत नहीं चाहते? आज वह नहीं है, इसलिए नहीं चाहते यह अलग बात है। अगर आपके पास भूमि आयेगी तो भी मालकियत नहीं चाहेंगे ऐसा होगा? तो उन्होंने कहा कि यदि ईमानदारी से कहना हो तो हमारे दिल की वह तैयारी नहीं है। आज इस बात की आवश्यकता है इसलिए इसे एक तत्त्व के रूप में हम कह देते हैं। इसे ही Virtue out of necessity (आवश्यकता से प्रेरित होनेवाला गुण) कहते हैं। विनोबा ने कहा कि जिन्होंने भूमि की मालकियत का विसर्जन करने का संकल्प किया हो उनका ही संगठन हो। अंग्रेजों के खिलाफ यानी साम्राज्यवाद के खिलाफ कौन लड़ सकता है? जो दूसरे को गुलाम न समझता हो। समाज से जिस बुराई को हम मिटा देना चाहते हैं वह बुराई हमारे दिल में पहले नहीं रहनी चाहिए।

संगठन और संस्था का विचार कुछ तफसील से करने की आवश्यकता है। ये शून्य में से पैदा नहीं होते हैं। किसी-न-किसी सामाजिक प्रश्न को लेकर संगठन खड़ा होता है। ऐसे संगठनों और संस्थाओं से हमारी आशा और अपेक्षा यह होती है कि वे प्रचलित सामाजिक प्रतिष्ठाओं को बदल दें। यदि इन प्रचलित प्रतिष्ठाओं को पूरी तरह बदल नहीं सकते तो वे संगठन हमारे काम के नहीं होंगे। इसलिए मैंने कुटुम्ब-संस्था को लिया। यह सबसे पवित्र संस्था मानी जाती है। लोगों ने हमसे पूछा कि कुटुम्ब-संस्था का क्या होगा? संयोजन में भी कुटुम्ब-संस्था से ही प्रारम्भ किया जाता है इसीलिए इसे पहले लिया।

साधनों पर निरपेक्ष स्वामित्व हो

हमारा यह देश किसानों का देश है। यहाँ अभी तक यह नियम

संस्था को क्रान्तिकारी बनाने के लिए उसके दोषों का हम निवारण करना चाहते हैं। संस्थाओं की दिशा और गति उस ओर होगी। संस्थाओं का एक ही प्रवाह होगा। कुटुम्ब में स्त्री उसी तरह एक स्वतन्त्र सदस्य और एक घटक-अवयव होगी जिस प्रकार पुरुष है। जो स्त्री नागरिक हो गयी है वह कुटुम्ब की स्वतन्त्र सदस्य होगी और इस नागरिकता से स्त्री का मातृत्व सम्पन्न होगा। यह एक मूल्य है।

रक्त-निरपेक्ष कुटुम्ब

दूसरा मूल्य यह कि कुटुम्ब का आधार सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए। स्त्रियों को भी सम्पत्ति का अधिकार देने के सम्बन्ध में लोकसभा में जब कानून पेश हुआ तो उसका बहुत विरोध हुआ। सब विरोधों और आक्षेपों का एक ही आशय था कि इससे कुटुम्ब-संस्था नष्ट हो जायगी। उस समय मैं लोकसभा का सदस्य था। डॉ. अम्बेडकर ने इसके सम्बन्ध में मेरी राय माँगी तो मैंने कहा था कि कुटुम्ब में से सम्पत्ति को हटा ही देना चाहिए। उससे सारा झगड़ा हल हो जायगा। जब तक कुटुम्ब का सम्बन्ध सम्पत्ति से रहता है तब तक भाई-बहन और स्त्री-पुरुष का विवाद हुआ ही। एक माँ की कोख से पैदा होने पर भी भाई-भाई में झगड़ा होता है क्योंकि सम्पत्ति बीच में है। जिनके स्वार्थ और हित-सम्बन्ध समान होते हैं उनमें संघर्ष होता है। संघर्ष या तो सत्ता के लिए होता है या सम्पत्ति के लिए होता है। हम ऐसे समाज का संगठन बनाना चाहते हैं जिसमें सत्ता या सम्पत्ति के लिए संघर्ष न हो, प्रतियोगिता न हो। ऐसे समाजवादी हम बनना चाहते हैं। हमारी प्रतिज्ञा है कि सत्ता और सम्पत्ति दोनों का समाजीकरण करना है। हम इतना चाहते हैं कि इनके लिए संघर्ष न हो। इसका आरम्भ घर से होता है। राजा के लड़के ही एक-दूसरे को मारते रहे ऐसा नहीं है, यह झगड़ा तो घर-घर में होता है। झगड़े की बुनियाद सम्पत्ति है, उसे ही हटा देना चाहिए। रक्त और विवाह के

आधार कुटुम्ब में आज भी है कल भी रहेंगे। अन्य सामाजिक संस्थाओं का आधार औद्योगिकता होगी लेकिन रक्त-सम्बन्ध और विवाह-सम्बन्ध नहीं होगा। उनका स्वरूप न आश्रम का होगा न कम्यून का होगा। उनका स्वरूप कुटुम्ब का होगा केवल रक्त-सम्बन्ध नहीं होगा।

संगठन समाज के दोषों से मुक्त हों

संगठनों का स्वर (Tone) कैसे बदले? आज जितने भी संगठन हैं वे स्वार्थ की बुनियाद पर होते हैं। इसलिए उनका स्वार्थ समान है, मांग समान है और शिकायत भी समान है। इसे यूनियनिज्म (Unionism) कहते हैं। अन्तिम अवस्था में जब कि स्वार्थों का कोई संघर्ष नहीं रहेगा तब ये संगठन भी नहीं रहेंगे। क्रान्ति के संक्रमण-काल में यह यूनियनिज्म (Unionism) नहीं रहेगा लेकिन संगठन रहेगा। इस संगठन के लिए एक नियम है वह यह कि समाज में हम जो-जो दोष मिटाना चाहते हैं वे दोष इस संगठन में नहीं होने चाहिए। एक शहर में विद्यार्थियों का आन्दोलन हुआ। वहाँ हमारे कुछ साथी गये थे। उन्होंने मुझे भी बुलाया। मैंने उनसे पूछा कि यह आन्दोलन किसलिए हो रहा है। लोगों ने कहा कि एक प्रोफेसर का एक स्त्री के साथ अनैतिक सम्बन्ध था इसके विरोध में यह आन्दोलन है। मैंने पूछा कि कितने विद्यार्थी ऐसे होंगे जिनका अनैतिक संबंध और अनैतिक रुख नहीं है। अनैतिक दृष्टि रखने वाले विद्यार्थी कम-से-कम सत्तर प्रतिशत होंगे। तो इनके खिलाफ कोई आन्दोलन क्यों नहीं चल रहा है? इनके यूनियन में यह हिम्मत क्यों नहीं आ रही है कि अनैतिक विद्यार्थियों के ही खिलाफ आन्दोलन शुरू करें?

जिन बुराइयों को हम समाज से मिटाना चाहते हैं वे बुराइयाँ पहले हमारी संस्थाओं में नहीं होनी चाहिए। सरकारी संस्थाओं से यदि भ्रष्टाचार हटाना चाहते हैं तो गैर-सरकारी संस्थाओं में भी वह नहीं रहना चाहिए। सरकार में रिश्वतखोरी चोरी आदि दोष नहीं रहना चाहिए,

सापों को दबा देना चाहिए। संस्थाओं में क्या ये चीज नहीं है? इसे रोकने नौजवान वर्ग के लिए आपके पास वक्त नहीं है। तो क्या यह वक्त मैं राज करने के लिए वक्त मिल गया? यह आत्म-प्रतारणा है। इस आत्म प्रतारणा से समाज नरक में जाता है, समाज की दुर्गति होती है। असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। —ये असुर्य नामक लोक हैं जहाँ घना अन्धकार छाया हुआ है। वहाँ जानेवाले कौन हैं? ये के आत्महना जना — आत्मा का हनन करनेवाले आत्मा का हनन करनेवाले आत्मप्रतारक लोग, जो कि आत्म-प्रतारणा करते हैं। लोग हमसे पूछते हैं कि आप लोगों का मजदूर यूनियन या विद्यार्थियों का यूनियन कभी नहीं बनेगा? जरूर बनेगा लेकिन ऐसे संगठनों का पहला सवाल यह होगा कि वे समाज में से जिन बुराइयों को मिटाना चाहते हैं, वे उनके भीतर नहीं रहेंगी। एक रिक्शेवाले को कोट-पतलून-वाले बाबू ने तमाचा मार दिया। रिक्शावालों ने मुझे बुलाया और कहा कि आप हमारे इस युनियन-संघ के प्रतिनिधि हैं। वे हमें मार रहे थे यह आराम क्या हो रहा है। हमारा यदि अपराध है तो हम क्षमा चाहते हैं, यदि अपराध उनका है तो वे हमसे क्षमा माँगें। आप हमें न्याय दिलाइये।" मैंने कहा कि मैं उस बाबू को बुला तो सकता हूँ और अगर तुम उसको तमाचा लगाना चाहो तो लगा भी सकते हो। लेकिन एक शर्त है और वह यह कि तुम्हारा साथी दूसरा कोई रिक्शावाला किसी स्त्री के साथ दुर्व्यवहार करता तो तुम्हारा यूनियन न हो उसकी सजा होनी चाहिए। तब वह चुप हो गया और दुबारा मुझे बुलाया नहीं।

विधायक पहलू प्रमुख

यह क्या होता है? इसलिए कि हमारी संस्थाओं में विधायक पहलू नहीं है। हमारी रचनात्मक क्रान्ति में से विधायक शक्ति और प्रतिभा बढ़नी चाहिए। नहीं तो वह सच्चा क्रान्तिकारी नहीं हो सकती।

दोषी को दण्ड देना चाहिए। संस्थाओं में क्या ये दोष नहीं हैं? इन्हें लेकिन लोकहीन करने के लिए आपके पास वक्त नहीं है। तो क्या तरकार में चोरी करने के लिए वक्त मिल गया? यह आत्म-प्रतारणा है। इस आत्म-प्रतारणा से समाज नरक में जाता है, समाज की दुर्गति होती है। असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। —जो असुर्य नामक लोक है वहाँ घना अन्धकार छाया हुआ है। वहाँ जानेवाले कौन हैं? 'ये के च आत्महनो जनाः' —आत्मा का वंचन करनेवाले आत्मा का हनन करनेवाले आत्मघातक लोग जो कि आत्म-प्रतारणा करते हैं। लोग हमसे पूछते हैं कि आप लोगों का लेबर यूनियन या विद्यार्थियों का यूनियन कभी नहीं बनेगा? अवश्य बनेगा लेकिन ऐसे संगठनों का पहला मकसद यह होगा कि वे समाज में से जिन बुराइयों को मिटाना चाहते हैं वे उनके भीतर नहीं रहेंगी। एक रिक्शेवाले को कोट-पतलूनवाले बाबू ने तमाचा मार दिया। रिक्शावालों ने मुझे बुलाया और कहा कि 'आप हमारे इस चुनाव-क्षेत्र के प्रतिनिधि हैं। वे हमें मार रहे हैं यह आपने देखा ही है। हमारा यदि अपराध है, तो हम क्षमा चाहते हैं यदि अपराध उनका है, तो वे हमसे क्षमा माँगें। आप हमें न्याय दिलाइये।' मैंने कहा कि 'मैं उस बाबू को बुला ला सकता हूँ और अगर तुम उनको तमाचा लगाना चाहो तो लगा भी सकते हो। लेकिन एक शर्त है और वह यह कि तुम्हारा साथी दूसरा कोई रिक्शावाला किसी स्त्री के साथ दुर्व्यवहार करेगा तो तुम्हारे यूनियन में ही उसकी सजा होनी चाहिए।' तब वह चुप हो गया और दुबारा मुझे बुलाया नहीं।

विधायक पहलू प्रमुख

यह क्यों होता है? इसलिए कि हमारी संस्थाओं में विधायक पहलू नहीं है। हमारी रचनात्मक क्रांति में से विधायक शक्ति और प्रतिभा बढ़नी चाहिए। नहीं तो वह संस्था क्रान्तिकारी नहीं हो सकती।

नहीं हुआ कि भूमिधारण (Holding) व्यक्तिगत रहेगा कौटुम्बिक रहेगा या सहकारी रहेगा। हम कहते हैं कि उत्पादन के साधनों में निरपेक्ष स्वामित्व नहीं होना चाहिए। अब उत्पादन के साधनों और उत्पादन के उपकरणों में अन्तर समझ लेना चाहिए। उत्पादन के साधनों में दो चीजें आती हैं—नैसर्गिक साधन और निसर्गप्राप्त साधन (Capital resources and Capital goods) नैसर्गिक साधन है जमीन निसर्गप्राप्त साधन हैं—कोयला लोहा आदि यानी ईंधन और कच्चा माल। इसके बाद उपकरण आते हैं। इसलिए मैंने पहले इस वाक्य पर दिया। उत्पादन के साधनों पर निरपेक्ष स्वामित्व नहीं होना चाहिए। कुटुम्ब के पास भी नहीं होना चाहिए। एक कुटुम्ब को जोतने के लिए जमीन दी। वह कहता है कि मैं जोतूँ या न जोतूँ, यह मेरी है मैं उसे किसीको दे सकता हूँ बेच सकता हूँ चाहे जो कर सकता हूँ। यह निरपेक्ष स्वामित्व हर चीज में आता है। यह कोई जरूरी बात नहीं है कि मेरे पास चाँदी का गिलास है तो राज उसीमें दूध पीऊँ। उसको रखे रखता हूँ जरूरत होने पर बेच देता हूँ। मेरे पास चाँदी की भगवान् बुद्ध की मूर्ति हो तो उसे भी बेच देता हूँ। यह निरपेक्ष स्वामित्व कहलाता है।

निरपेक्ष स्वामित्व

क्या जमीन का निरपेक्ष स्वामित्व हो सकता है ? उत्पादन में निरपेक्ष स्वामित्व नहीं है। व्यक्तिगत स्वामित्व की चीज जमीन या दूसरा उत्पादन का साधन नहीं हो सकती। वह कुटुम्ब की भी सम्पत्ति नहीं हो सकती नहीं होनी चाहिए। किसान के मालकत्व का (Peasant Proprietorship) महत्त्व हम इतना ही मानते हैं कि जब तक जमीन का वह उपयोग कर रहा है तब तक जमीन पास रख सकता है। मकान में रहना मकान का उपयोग है मोटर पर सवारी करना मोटर का उपयोग है। यह निरपेक्ष

स्वामित्व नहीं है। उपयोग का अधिकार है। उपयोग की चीजों में उपयोग का अधिकार होगा यह निजी सम्पत्ति होगा। लेकिन उत्पादन के साधनों में यह कैसे हो सकता है? आनुवंशिक हक भी निरपेक्ष हक होता है। किसान का लड़का खेती करने के बदले वकालत करता है फिर भी उसकी जमीन उसके कुटुम्ब की सम्पत्ति है। यह किसान का मोजकत्व (Peasant Proprietorship) भी नहीं है ट्रस्टीशिप (विश्वस्तवृत्ति) भी नहीं है। ट्रस्टीशिप का मतलब है—मैं जमीन का बिगाडूँगा नहीं आज मेरे पास जैसी है उससे ज्यादा सुधारकर समाज को दूँगा। अगर कल मैं नहीं जोतूँ तो उसके बदले कुछ पैसे मिलें या नहीं मात्र मैंने जैसी जमीन पायी है उससे अच्छी वह समाज के पास आयगी। जैसा मकान मैंने पाया है उससे अच्छा मकान समाज को दूँगा। यह ट्रस्टीशिप है। इसको अस्तुनिष्ठा कहते हैं।

श्रम का आदर

वस्तुनिष्ठा का एक दूसरा अंग है। वह यह कि मनुष्य की बनायी हुई वस्तु का आदर करना। हमने गंगा को विभूति माना है। भगवद् गीता में भगवान ने गंगा उच्चैःश्रवा (इन्द्र का घोड़ा) ऐरावत (इन्द्र का हाथी) हिमालय आदि को विभूतियों में गिना है। सामाजिक व्यवहार में और सृष्टि में जो भी वस्तु वैभव-संपन्न और ऊर्जित है उन सबको विभूति कहा है। 'श्रीमदूर्जितमेव वा'। श्रीमत् यानि गुणसम्पन्न। श्री का अर्थ है शोभा। समाज में जो गुण-सम्पन्न व्यक्ति हैं सृष्टि में जो बलवान हैं ऊर्जित हैं, भव्य हैं उन सबको विभूतियों में गिनाया है। दीवार पर एक चित्र टँगा है। पूछा तो कहते हैं—'यह हमारे खास खास के बेटे का बनाया हुआ है।' यहाँ क्या होता है? क्या यह रविवर्मा के चित्र से ज्यादा सुन्दर है? क्या नन्दलाल बाबू के या अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र से ज्यादा कलापूर्ण है? कहते हैं—यह कुछ हम नहीं जानते। यह मेरे

बेटे का बनाया हुआ है। मेरे बेटे का बनाया हुआ यह चित्र मेरे लिए जीवन की एक विभूति है। केवल उपभोग की वस्तु नहीं है, पूजा की सामग्री भी नहीं है। केवल सुख का या सुविधा का साधन नहीं है, एक विभूति है। क्योंकि बनानेवाले के साथ मेरा स्नेह-सम्बन्ध है। मनुष्य-मात्र की बनायी हुई हर वस्तु मेरे लिए विभूति होनी चाहिए। उसका अपव्यय होने नहीं देना चाहिए। मितव्ययता के कार्यक्रम बनाये जाते हैं। लोग कहते हैं कि बचा-बचाकर चीजों का उपयोग करना चाहिए, धन का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि धन जीवन की विभूति है। लेकिन यह नहीं सिखाया है कि मनुष्य के परिश्रम से जो भी कुछ बनता है वह सब जीवन की विभूतियों के रूप में हमें दिखाई देना चाहिए।

प्रेरणा

पाण्डीचेरी के अरविन्द आश्रम में तीन दिन के लिए गये थे। वहाँ हर एक चीज साफ, बिलकुल आइने की तरह स्वच्छ थी। उसका स्वरूप देखते ही तबीयत खुश हो जाती थी। हर जगह एक छोटी-सी चिट्ठी दिखाई देती थी, जिसमें माताजी का यह सन्देश लिखा हुआ था कि—'हर वस्तु का अपना व्यक्तित्व होता है, एक प्रयोजन होता है। दुनिया में कोई भी वस्तु निरुपयोगी नहीं है। हर वस्तु अपनी जगह उपयोगी है। जो अपनी जगह पर नहीं है, उसीका नाम कचरा है। लेकिन कचरा भी अपनी जगह पर हो तो वह खाद बन जाता है। हर वस्तु अपनी जगह पर है, तो वह जीवन की विभूति है। सम्पत्ति है। किसी भी वस्तु को बिगाड़ना या उसका दुरुपयोग करना असभ्यता है। यह विभूति का एक रूप है, जो हमारे आर्थिक नियोजन में, हमारी शिक्षा-संस्थाओं में आना चाहिए। परिश्रम से जो जो वस्तु बनती है, वह हर वस्तु विभूति है। वह केवल जीवन की न सुविधा नहीं है, केवल विलास का विषय नहीं है, आनन्द की सामग्री

ही नहीं है, लेकिन जीवन के विकास में सहायक एक विभूति है। इसको आध्यात्मिकता कहें या न कहें लेकिन अर्थ-विज्ञान में एक मूलभूत चीज होना चाहिए। अर्थ-विज्ञान में जितनी भी प्रेरणाएँ होती हैं सब हार्दिक होनी चाहिए। आर्थिक प्रेरणा एक मिथ्या प्रेरणा है। समाज में आज तक इसके भरोसे कोई काम नहीं हुआ है। जितने बड़े-बड़े काम हुए हैं उनमें से कोई भी काम आर्थिक प्रेरणा से नहीं हुआ है। दुनिया में अभी तक जितनी क्रांतियाँ हुई हैं समाज सुधार के काम हुए हैं इनमें कोई भी आर्थिक प्रेरणा नहीं रही है। परिवर्तन या अदला-बदली का अर्थ-शास्त्र भी मिथ्या है वह कभी रहा नहीं है।

आज भगवद्गीता तीन आने में मिलती है। कोई उपन्यास तीन रुपये में मिलता है। शराब की बोतल दस रुपये में मिलती होगी दूध का कटोरा चार आने में मिलता है। इस अर्थशास्त्र में कौन-सा द्रव्य अधिक महत्व का है? एक विलक्षण उदाहरण है—माँ के दूध का कभी कोई मूल्य हुआ ही नहीं। तो क्या वास्तव में उसका कोई मूल्य नहीं है? आज का अर्थशास्त्र अपशास्त्र है यानी उसमें कोई शास्त्रीयता नहीं है। इसमें जीवन के मूल सिद्धान्तों का विचार नहीं हुआ है।

संस्थाओं का रुख

संस्था और संगठन की आर्थिक उपयोगिता, व्यावहारिक कार्यक्षमता, आज की परिस्थिति में उनकी आवश्यकता इत्यादि के बारे में आज तक विचार होता आया है और आज भी हो रहा है। अभी इस पर अधिक मर्मगामी और सूक्ष्मग्राही विचार होना जरूरी है। जिस प्रकार उत्तरवाहिनी गंगा और पश्चिमवाहिनी कावेरी अधिक पवित्र मानी जाती है, उसी प्रकार जितनी संस्थाएं और संगठन हैं, उनका रुख मानवता की दिव्य विभूतियों की ओर होना चाहिए। तात्कालिक उपयोगिता का विचार गौण होना चाहिए। समाज में समय-समय पर कई संस्थाएं और संगठन बनते रहते हैं जो कुछ विशिष्ट स्वार्थों और विशिष्ट हित-सम्बन्धों के लिए होते हैं। उन्हें प्रचार ग्रुप यानी अपनी बात जबरदस्ती दूसरे को समझाने का साधन नहीं होना चाहिए। अपनी बात दूसरों को मनवाने के लिए ही जो संस्था बनती है उसे प्रचार ग्रुप कहते हैं। ऐसी तीन चार संस्थाओं का उदाहरण लें। एक है कारखाना, दूसरा बाजार, तीसरा राजनैतिक पक्ष और चौथा राज्य। इनके कारण मनुष्य की मनुष्यता और उसका व्यक्तित्व क्षीण हो जाता है।

व्यक्तित्व का विघटन

पहले कारखाने को लें। कारखाना क्या करता है? एक काम यह कि वह आदमी को एक ही काम सौंप देता है। इससे आदमी का व्यक्तित्व उस सीमा तक सीमित हो जाता है। कारखाना मनुष्य की मनुष्यता का विचार नहीं करता। जितना काम उसको सौंपा गया है, उतना पूरा होना

चाहिए। उसका आदर्श है 'क्षमता (Efficiency)' है। काम में वेग और कुशलता होनी चाहिए। काम का यह स्वभाव है कि उसमें मानवीय मूल्यों की पहचान नहीं होती है (It is colour-blind to human values) जिस प्रकार इन्द्रधनुष में सात रंग होते हैं उनमें एक कोई रंग दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार जीवन के विविध रंगों को वह नहीं देख सकता। मनुष्य किसी एक काम में कुशलता प्राप्त कर लेता है इससे मनुष्य के व्यक्तित्व के टुकड़े हो जाते हैं जो एक समग्र व्यक्तित्व था वह छिन्न-विच्छिन्न हो जाता है।

समग्रता का ह्रास

इस टुकड़ीकरण में (Fragmentation में) यह गुण है इससे विशेषज्ञता (Specialization) प्राप्त होती है। दोष यह है कि समग्रता की हानि होती है। अस्पतालों में देख सकते हैं—पेशाब की जाँच करानी हो तो एक जगह जाना पड़ता है, खून की जाँच करानी हो तो दूसरी जगह जाना होता है आँख की जाँच करानी हो तो और एक जगह जाना पड़ता है। एक डॉक्टर कहता है कि मैं केवल पेट को देख सकता हूँ दूसरा केवल फुप्फुस का विशेषज्ञ है तीसरा केवल स्नायु का विशेषज्ञ है। यह विशेषज्ञता (specialization) बढ़ती चली जाय तो कहाँ तक जा सकती है? दाहिनी आँख का डॉक्टर अलग और बायीं आँख का अलग यह भी हो सकता है। इससे मनुष्य एक अवयव बन जाता है और अपने व्यक्तित्व के केवल एक अंश का विकास करता है। लेकिन विशेषज्ञता में होना यह चाहिए कि जो गुण है उसका विकास तो हो लेकिन जो समग्रता है उसका अभाव न हो।

कुशलता का दाम

आज जो आधुनिकतम यन्त्र-प्रारम्भ आ रहा है उससे समग्रता का घट

विचार आ रहा है। लेकिन इसके साथ मनुष्य की कुशलता का विचार क्षीण हो रहा है। रूस में अनुवाद करनेवाली एक मशीन बनायी गयी है। वह मशीन आध मिनट में जितने रूसी शब्दों का अंग्रेजी में अनुवाद कर सकती है उतने शब्दों का अनुवाद करने के लिए मनुष्य को ४५ मिनट लगेंगे। काम बहुत जल्दी होता है। यह अच्छा है। लेकिन अखबार में अन्त में एक वाक्य लिखा था कि इस मशीन को जो आदमी चलायेगा उसको यह आवश्यक नहीं है कि रूसी भाषा भी मालूम ही हो। इस मार्ग से काम होने के बदले हानि होती है। मशीन उस मनुष्य का काम कर लेती है तो समग्रता के साथ-साथ मनुष्य की कुशलता भी कम होती जाती है। इसलिए मनुष्य का भी काम रहना चाहिए। मनुष्य को यन्त्रों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। हमारे यहाँ जाति भेद के बारे में यही हुआ। जाति-भेद में इतनी विशेषता (Specialization) हुई कि विद्या और आचरण का अधिकार कुछ जातियों की सम्पत्ति बन गया। इससे मनुष्यता की और मनुष्य की समग्रता की हानि होती है। मनुष्य का व्यक्तित्व समाहारक (Synthetic) होना चाहिए लेकिन कारखाने के कारण वह नहीं हो रहा है।

बाजार का महत्त्व

दूसरी संस्था है बाजार। बाजार आज के समाज की सबसे मुख्य संस्था है सबसे आकर्षक भी रहा है। देहातों लोग शहर केवल इसीलिए जाते हैं कि वहां का बाजार देखना है। आप दिल्ली हो आये। आपसे पूछा जाय कि वहां क्या-क्या देखा तो आप कहेंगे कि कनाट प्लेस देखा चाँदनी चौक भी देखा। देहात की औरत बाजार जा रही है। उससे आप कहिए कि शहर में जो कीमत है वह हम देंगे आम यहीं दे दो तो वह नहीं मानेगी। बोलेगी शहर जायेंगी। क्योंकि वह जो नयी साड़ी पहनकर निकली है वह आपको दिखाने के लिए नहीं है। गाँव से वह सड़ा-

बाजार मामक समूह (Collective) का परिणाम है। इस समूह का मनुष्य जैसा उपयोग हो रहा है इस प्रकार संस्थाओं का उपयोग नहीं होना चाहिए।

पक्षाधीन मत

तीसरा संगठन है राजनैतिक पक्ष। पक्ष में आप कौन हैं? केवल मतदाता (वोटर) हैं। पक्ष को केवल आपके मत (वोट) से मतलब है। आपके चित्त से और दिमाग से कोई मतलब नहीं। आपका मत (V te) पक्ष की मर्जी और आज्ञा के मुताबिक पड़ना चाहिए। नहीं तो आपके मत (Vote) की कोई कीमत नहीं है। इसमें विरोध (Contrad tion) कहाँ है? मत अलग है वोट अलग है। आपकी जो असली राय है वह आपका मत है। आज वह आपकी राय अलग है और आपका वोट अलग है। इन दोनों में बहुत बड़ा विरोध (Contra d ction) आता है। इसलिए पक्ष भी मनुष्य की मनुष्यता को परिमित कर देता है।

उपाधिग्रस्त मानव

अब अन्त में राज्य (State) का प्रश्न। अब तक पूँजीपति या खानगी संस्थाएँ (Pr te Age cy) की गुलामी करनी पड़ी। क्या अब राज्य की करनी होगी? गैरसरकारी व्यक्ति या संस्था अब तक जो शोषण करती थी वह शोषण अब राज्य करने लगा है। राज्यमत शोषण क्या अच्छा शोषण है? शोषण शोषण ही है इस तरह राज्य (State) भी मनुष्य के व्यक्तित्व को परिमित कर देता है। इसे फंक्शनलिज्म (F tic nalism) कहते हैं। मनुष्य एक व्यवसाय में लीन हो जाता है एक विशिष्ट भूमिका में बंध जाता है। कारखाने में वह एक काम करता है तो काम (Fun tio) एक ही हो जाता है। बाजार में वह

एक छोटी-सी विकल भोग्य वस्तु रहता है। पक्ष में जिसके पास वोट है वह एक वोटर है। राज्य में काम करनेवाला है, वह कर देनेवाला है। समाज की सम्पन्नता का वह एक उपकरण है। इसलिए मैंने कहा कि मनुष्य जब काम में खो जाता है तब व्यक्तित्वहीन (Colour blind) हो जाता है।

समग्रता बनी रहे

तो समाज कैसा होना चाहिए? संस्था कैसी होनी चाहिए? कारखाना उत्पादन की संस्था है, बाजार वितरण की संस्था है, और तीसरी-चौथी संस्थाएँ व्यवस्था की और शासन की संस्थाएँ हैं। सारी संस्थाओं में दृष्टि एक ही होनी चाहिए कि मनुष्य का व्यक्तित्व समग्र रहे अखण्डित रहे। मूर्ति-भंजक जिस प्रकार मूर्तियाँ तोड़ देते हैं वैसा न हो। मनुष्य का व्यक्तित्व भी इस तरह से विच्छिन्न हो जाता है तो मनुष्य के लिए ये सारी संस्थाएँ 'मूर्ति-भंजक' हो जायेंगी। संस्थाओं का यह रोल नहीं होना चाहिए। आजकल एक विचार सामने आ रहा है कि हमारा समाज फंक्शनल (कार्यात्मक) होगा हरएक मनुष्य का एक काम होगा। एक भूमिका और एक कार्य। इसके फलस्वरूप समाज में यदि फंक्शनलिज्म (कामवार) आ जायेगा तो संस्थाओं के कारण जो खतरा माना था वह दुबारा आयेगा। इसलिए समाज में व्यवसायों की कारीगरी की और कुशलता की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें मनुष्य के व्यक्तित्व की समग्रता की हानि न हो। विशेषता होगी लेकिन समग्रता भी रहेगी। किसी विशेष विषय का विशेष कला का विशेष ज्ञान तो हो ही लेकिन उसके साथ-साथ जीवन में जितने सामान्य ज्ञान की आवश्यकता है जिसका ज्ञान एक सुबुद्ध नागरिक के लिए आवश्यक है उतना सब होना चाहिए।

उत्पादन-विवेक

आज लोग कहते हैं कि केवल तकनीकी शिक्षा काफी नहीं है, सामान्य ज्ञान भी चाहिए। यान्त्रिक और व्यावसायिक शिक्षण अपने में पर्याप्त नहीं है। सामान्य सांस्कृतिक विकास भी होना चाहिए। यह केवल शिक्षा-संस्थाओं के लिए ही नहीं उत्पादक और वितरक संस्थाओं के लिए भी लागू होना चाहिए। हर संस्था में इतनी सावधानी बरतनी होगी। समाजवाद आज यहाँ तक पहुँच गया है कि— विक्रय के लिए उत्पादन नहीं होगा। पूँजीवादी अर्थ-शास्त्र भी इस दिशा में आगे बढ़ रहा है। अमरीका से दूध आ रहा है, लेकिन वह न तो विनिमय के लिए है, न विक्रय के लिए। इसका मतलब है कि उसका मानस (Trend) समाजवादी अर्थशास्त्र की तरफ है। यह नियति है। इसको समाजवादी अर्थशास्त्र कहें, चाहे सर्वोदय का अर्थशास्त्र लेकिन उसी ओर अब पूरा झुकाव है उसी दिशा में प्रगति है।

उत्पादन का सांस्कृतिक मूल्य

उसमें मुख्य वस्तु क्या है? उसमें बाजार नहीं रहेगा। खादी और ग्रामोद्योग के नाम पर इस तरह की कोशिश हो रही है। यों तो बाजार का स्तर (T) बदलने का प्रयत्न चल रहा है, लेकिन समाजवादी अर्थशास्त्र में बाजार नाम की चीज ही नहीं रहेगी। जो वस्तु बनेगी वह उपयोग के लिए बनेगी विक्रय के लिए या विनिमय के लिए नहीं। यहाँ तक समाजवाद आया है। हम कहते हैं कि समाज में परस्पर समर्पण होगा। श्रम का और श्रमजन्य पदार्थ का विनिमय नहीं परस्पर समर्पण होगा। विनिमय अलग चीज है समर्पण अलग। विनिमय में आदान-प्रदान और प्रतिदान होगा समर्पण निरपेक्ष होगा। समाज में परस्पर समर्पण की भावना का विकास होना चाहिए। इसे सर्वोदय का अर्थशास्त्र कहते हैं। उत्पादन उपयोग के लिए होगा—इतना काफी नहीं है। उत्पादन

और परिश्रम दोनों समर्पण के लिए होना चाहिए। उपयोग भक्ति-पूर्वक होना चाहिए, उतना भक्तिपूर्वक कि जितनी भगवान् का प्रसाद ग्रहण करने में होती है। जितना उपादान है, वह सारा प्रसाद है। इसमें एक बड़ा सिद्धान्त है। ईश्वर-निर्मित सृष्टि का जो आदर करता है, सृष्टि को देखकर जो प्रसन्न होता है, वह सृष्टि का भक्त है। सृष्टि को देखकर कवि का हृदय उछलता है, वह सृष्टि का प्रेमी है, सृष्टि का वह वास्तविक भक्त है। मानव-निर्मित वस्तु के लिए जिसके मन में प्रेम है, वह रसिक है और ईश्वर-निर्मित वस्तु के लिए जिसके मन में प्रेम है, वह आस्तिक है। इसे Sense of aestheticism कहते हैं। मनुष्य की बनायी हुई वस्तुओं में जो पवित्रता दीखती है, इसका परिणाम यह है कि वस्तु के साथ मनुष्य की एक प्रकार की आत्मीयता बनती है। संग्रह की आत्मीयता में और इसमें फर्क है और वह बहुत सूक्ष्म है। संग्रह की आत्मीयता में ममत्व की भावना है, लेकिन यह आत्मीयता एक सांस्कृतिक मूल्य है, इसमें सम्पत्ति की भावना नहीं है।

उपेक्षा का खतरा

अपरिग्रही समाज में जहाँ सम्पत्ति की भावना नहीं है, क्या वहाँ वस्तु का आदर होगा ? इसमें एक दूसरा खतरा है। वह यह कि जो चीज किसीकी नहीं उसकी फिक्र कौन करेगा ? ऐसे काम की जिम्मेदारी जिसको दी जाती है वह कामचोर बनेगा काम की तरफ ध्यान नहीं देगा। रेलगाड़ी में बत्ती नहीं है तो कोई नहीं देखता है, क्योंकि सार्वजनिक वस्तु के लिए किसीको आदर नहीं है।

रसिकता का अर्थ

मन्दिर में जो वस्तु है वह यदि भगवान् की है तो समाज में जो वस्तुएँ हैं वे भी भगवान् की हैं मनुष्य-कृत हैं मनुष्य के लिए हैं। मनुष्य के लिए यदि मेरे मन में आदर है तो मनुष्य-कृत वस्तुओं

के लिए भी आदर होना चाहिए। यह रसिकता है। सुन्दर नदी देखकर अगर मुझे आनन्द होता है, तो क्या उस नदी को सुखाने में आनन्द हो सकता है? सुन्दर पर्वत देखकर यदि आनन्द होता है, तो क्या पर्वत को फोड़ने में आनन्द होगा? किसी कार्य विशेष के लिए फोड़ना पड़े तो यह बात अलग है। किसी फूल को देखकर अगर मुझे आनन्द होता है, तो उस फूल को कुचलने में क्या आनन्द? रसिकता और सौन्दर्य की भावना मानव-निर्मित वस्तु के लिए आदर में है।

उत्पादन और उपभोग दोनों का सम्बन्ध कहाँ तक गया है, यह अब ध्यान में आवेगा। जिस वस्तु का उपभोग करता हूँ वह आदरपूर्वक और प्रसाद के रूप में करता हूँ। यह सामाजिक आध्यात्मिकता है। वस्तु के तिरस्कार में आध्यात्मिकता नहीं है। संयम और वैराग्य अलग चीजें हैं। वस्तुओं का लोभ न हो यह अलग चीज है। वस्तु की प्रतिष्ठा न हो कद्र न हो यह मानवता नहीं है, सभ्यता नहीं है। प्रत्येक वस्तु की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। मनुष्य में सौन्दर्य की अभिरुचि जन्मसिद्ध है। इसमें कोई अपवाद नहीं है। बाद में उसको शिक्षण के द्वारा विकसित करना होता है। यह विकास उन संस्थाओं में भी किया जाना चाहिए जहाँ उत्पादन होता है। आज सुन्दर-सुन्दर साबुन निकलता है, क्योंकि लोगों को आकर्षित करना है। किसीको आकर्षित करने के लिए भी सुन्दर चीज बनती है। उसमें एक बात हम जोड़ना चाहते हैं कि वह वस्तु विनिमय और विक्रय के लिए न बने। तब बाजार नाम की संस्था का समाज में से धीरे-धीरे ह्रास हो जायगा, वह लुप्त हो जायगा। समाज में संग्रहालय तो रहेंगे लेकिन दूकान नहीं रहेगी। अजायबघर की तरह के भण्डार रहेंगे। लोगों में कहा कि इसमें सौन्दर्य-हानि होगी। आज दूकानदार आपको आकर्षित करने के लिए तरह-तरह की सुन्दर चीजें बनाता है, सजाता है। लेकिन उसमें सौन्दर्य की अभिरुचि को विकसित नहीं करना है, आपकी आतुरता को बढ़ाना है। वस्तु का आदर अपने

में एक रसिकता है। अब यही आदर वस्तु के निर्माण के साधन में होना चाहिए, जिन्हें हम औजार या उपकरण कहते हैं।

यन्त्र-विवेक

उपकरण का सम्बन्ध करण से होना चाहिए। उपकरण ऐसा हो जो करण की शक्ति और कुशलता को बढ़ाये। करण का अर्थ है इन्द्रिय और उपकरण वह जो करण के नजदीक का है। हाथ करण है तो हथौड़ा उपकरण है। हथौड़ा ऐसा हो जो हाथ की शक्ति बढ़ा सके हाथ के अनुरूप हो। जूता पैर के अनुरूप होना चाहिए। रविशंकर का सितार है। एक बार वह अपना सितार नहीं ले गया। मेजर ने कहा कि कहीं से भी आपके लिए सितार मँगा देंगे। उसने कहा दुनिया से कहीं से भी ला देंगे तो भी उसका उपयोग नहीं होगा। उस उपकरण के साथ मेरा जीवित सम्बन्ध हो गया है। वह सितार मेरे शरीर का अवयव हो गया है। इस सिद्धान्त को कला के क्षेत्र में स्वीकार कर लिया गया है। संगीत में और चित्रकला में अपना उपकरण कोई किसीको नहीं देता है। अपना कलम भी कोई दूसरों को नहीं देता है। उपकरण के विषय में भी एक आदर और आत्मीयता आती है। यह आत्मीयता परिग्रह की भावना नहीं है। यह रसिकता है। मालकियत या प्रभुत्व नहीं है। पेन, साइकिल, टाइप राइटर आदि भी दूसरे के हाथ में देना कोई पसन्द नहीं करता। मनुष्य के करण में और मनुष्य के उपकरण में ऐसी कौटुम्बिक भावना आनी चाहिए। सांस्कृतिक क्षेत्र में लोगों ने मान लिया है कि करण में और उपकरण में साधर्म्य होना चाहिए। यह साधर्म्य संस्कृति का अंग है।

व्यक्तित्व का विकास प्रमुख

विकेंद्रीकरण का एक नया पहलू आ रहा है। यंत्रीकरण और केंद्रीकरण के विषय में अब तक बहुत पहलुओं से विचार हुआ है। मनुष्य के

व्यक्तित्व के विकास का पहलू अब देखना है। इसमें उपकरण का क्या स्थान है? संस्कृति और कला को उद्योग और उत्पादन से अलग कर दिया गया है, श्रम को कुशलता से अलग कर दिया। उपकरणों के विषय में संस्कृति और विज्ञान के क्षेत्र में जो सिद्धान्त माना वह उत्पादन के क्षेत्र में नहीं माना। एक मर्यादा तक यह उपयुक्त है आवश्यक भी है। क्योंकि उत्पादन में वस्तु का एक आकार आवश्यक होता है। समाज और व्यक्तियों की जितनी आवश्यकता है उतनी मात्रा में वस्तु उपलब्ध होनी चाहिए। इसलिए उत्पादन के साधनों मे उत्पादन-क्षमता होनी चाहिए। उत्पादन-क्षमता का मतलब परिमाण-क्षमता। हो सकता है कि शिक्षण के लिए तकली सबसे अच्छी हो या पुराना चरखा ज्यादा अच्छा हो। उसके लिए आवश्यक अंबर चरखा उतना उपयोगी न हो। लेकिन समाज में जितनी मात्रा में उत्पादन की आवश्यकता है उतनी मात्रा में उत्पादन की क्षमता तकली में और पुराने चरखे में नहीं है तो शिक्षण और उत्पादन मे उतना अंतर रह जायगा। शिक्षण के उपकरण में और उद्योग और उत्पादन के उपकरण मे उतना अंतर रहने ही वाला है। हमारा कहना यह है कि इस अन्तर को जितना कम कर सकते हों करना चाहिए। दो विभाग (Dichotomy) न हो जाय। गांधीजी क्या चाहते थे? ग्रामोद्योग होंगे या नगरोद्योग होंगे? बड़े पैमाने पर होंगे या छोटे पैमाने पर होंगे? कुटीर-उद्योग होंगे या महत्-उद्योग होंगे? यह सारा विचार छोड़ दीजिये। विचार यह करना है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए क्या यह आवश्यक है कि उसके अवयवों और उसकी इन्द्रियों में घनिष्ठ संबंध हो उसके करणों और उपकरणों में आत्मीयता का संबंध स्थापित हो! यह मनुष्य की रसिकता कुशलता और कलात्मकता के विकास के लिए आवश्यक है। कला को यदि उत्पादन से बिलकुल अलग कर देंगे तो कला विलास की वस्तु रह जायगी। जैसे आज सिनेमा के तारों का नाच पहलवानों की कुश्ती ओलिंपिक गेम्स हैं। ये सब केवल मनोरंजन के साधन हो गये हैं।

संस्कृति की विकृति

इस तरह से संस्कृति केवल मनोरंजनात्मक रह जायेगी। जीवन में जिसे सांस्कृतिक प्रवृत्ति कहते हैं जिसे सांस्कृतिक क्षेत्र का उदात्त नाम देते हैं क्या उसका खिलवाड़ करेंगे ? यह एक आवश्यक प्रश्न है। युद्ध के साथ यही हुआ है। मैंने कहा है कि वीर-वृत्ति के और साहस के विकास के लिए युद्ध-वृत्ति को खेल में दाखिल करना है। ग्रीक इतिहास को 'युद्ध के लिए युद्ध' का एक 'पनोरमा' (Panorama) कहते हैं। पनोरमा का मतलब है एक अखण्ड दृश्य। वीर-वृत्ति के विकास के लिए एक अखण्ड युद्ध। बौद्धिक दृष्टि से इतनी उदात्त इतनी श्रेष्ठ और उच्च शिखर पर दूसरी कोई सभ्यता नहीं दिखाई देती। लेकिन उसका सत्यानाश हो गया। क्योंकि उन लोगों ने युद्ध को खिलवाड़ बना दिया। सुवर्ण धन स्त्री गुलामी उत्तेजना—ये सब वीरता के लक्षण माने जाने लगे। युद्ध क्यों हो रहा है ? सुवर्ण के लिए, अहंकार के लिए या स्त्री के लिए। बहुत-सी किताबों में लिखा हुआ है कि दुनिया में पहले जितने महायुद्ध हुए, सब स्त्रियों के लिए हुए हैं। राम और रावण का युद्ध सीता के लिए हुआ कौरव और पाण्डवों का युद्ध द्रौपदी के लिए हुआ ट्राय का युद्ध हेलन के लिए हुआ। फिर गुलामों के लिए युद्ध हुआ। और कुछ नहीं रहा तो उत्तेजना के लिए होता था। इससे संस्कृति का नाश हुआ पौरुष का विकास नहीं ह्रास हुआ।

उत्पादन में मानवीयता

उत्पादक परिश्रम और समाजोपयोगी उद्योग एक तरफ रह जायेंगे और जीवन के संजीवन के साधन कहलानेवाले कला आदि सांस्कृतिक साधन दूसरी तरफ रह जायेंगे तो दोनों में कोई अनुबंध नहीं होगा और मानवता का नाश होगा। हम कहते हैं कि मनुष्य की सारी-की-सारी संस्थाएँ मानवाभिमुख होनी चाहिए; उनका रुख मनुष्यता की तरफ होना चाहिए, सारे उद्योगों का रुख भी मनुष्यता की तरफ होना चाहिए।

मनुष्य का महत्त्व है, व्यक्ति। वस्तु पर बनानेवाले का भी नाम लिखा है, खरीदनेवाले का भी नाम लिखा है। कोई भी वस्तु अनामधेय नहीं है और कोई मनुष्य भी अनामधेय नहीं है। इसीका नाम Face to Face Community है (ऐसा समाज जिसमें मानव आमने-सामने रहते हैं)। इसमें कोई विरोध (Contradiction) नहीं होगा। हम यह कहते हैं कि एक तरफ कुटुम्ब और मनुष्य, दूसरी तरफ मानव का विश्व-कुटुम्ब और तीसरी तरफ ग्रामीकरण। एक तरफ विश्वव्यापी बुद्धि और दूसरी तरफ ग्रामीकरण। ग्रामीकरण में छोटे-छोटे गाँव और छोटे-छोटे क्षेत्र होंगे। लेकिन ये सब केवल नाम हैं। असली विभूति वह मनुष्य है, जो आपके पड़ोस में रहता है। वह मानवता की सगुण मूर्ति है। मानवता की सगुण मूर्ति वह मानव है, जिसके लिए आप परिश्रम करते हैं जिसके लिए उत्पादन करते हैं। वह मनुष्य एक हो सकता है अनेक हो सकते हैं लेकिन वह समुदाय नहीं है, मनुष्य ही है। वह समुदाय में खो नहीं जाता है। वह किसके लिए बनाया है? गाँव के लिए बनाया है। गाँव अव्यक्त है। गाँव के सबके लिए बनाया है जिसको आवश्यकता होगी उसके लिए बनाया है। इसमें बनानेवाले की आजीविका के लिए कितना मिला वह गौण है; महत्त्व की चीज यह है कि दोनों धन्यता अनुभव कर रहे हैं। बनानेवाले के मन में यह धन्यता और आनंद है कि अमुक आदमी मेरी बनायी हुई चीज काम में ला रहा है; बरतनेवाले के मन में यह धन्यता और आनंद है कि गाँव के अमुक मेरे साथी ने यह बनाया है। यह बरतन में उत्पादन का सामाजिक पक्ष है। इस छोटा समाज और प्रत्यक्ष समाज (Face to F C um ity) कहते हैं।

सह निवास का इकाई

गाँव कितना बड़ा या कितना छोटा होगा—ये सब व्यावहारिक

प्रश्न है। जिस समय जैसा मौसम होगा वहाँ जैसी परिस्थिति होगी वहाँ जैसी जमीन होगी उस तरह से वह गाँव बनेगा। गाँव ही होगा या शहर होगा। या शहर होगा वहाँ गाँव होगा। उसमें अरबनिज्म या सबर्बनिज्म नहीं है। वह अलग चीज है। बम्बई के सबर्बवासों से पूछिये—सवेरे आठ बजे से रात के आठ बजे तक आप कहाँ रहते हैं? बम्बई में। यहाँ कब आते हैं? सोने के लिए आते हैं। रविवार को भी घर के लिए मार्केटिंग करना पड़ता है। बाजार बन्द नहीं रहते? नहीं, हम लोगों के लिए खुले रहते हैं, सोमवार को बन्द करते हैं। इस तरह से वह सारा काम बम्बई में करता है, रहता है सबर्ब में। वह कहाँ का है? दोनों जगह का नहीं है। इसका नाम है सबर्बनिज्म। केवल सड़क बना-बनाकर शहर बढ़ाते चले जाते हैं। अब लोग हटकर रहना चाहते हैं। दुकान चलाते हैं शहर के बीच में, दूर रहते हैं शहर से दूर एक्सटेन्शन में। वहाँ क्यों रहते हैं? इसलिए कि वहाँ हवा अच्छी मिलती है। दुकान क्यों नहीं रखते? इसलिए कि दुकान चल नहीं सकती। शहर के लोगों से पूछिये कि शहर में यदि आपका धन्धा न हो तो आप वहाँ रहना पसन्द करेंगे तो कहेंगे कि मैं शहर से बाहर रहना पसन्द करूँगा।

शहर से आज धन्धे का रिश्ता (Business relation) है। इसमें मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता। डॉक्टर के लिए सारे मनुष्य आज के या कल के रोगी (Actual या Prospective Patients) हैं। वकील के लिए सारे मनुष्य कल के मुवक्किल (Prospecture Clients) हैं। जैसे धर्मोपदेश में किया हुआ है—मैं हरएक के लिए उपदेश करता हूँ (I preach for everyone)। उसी तरह वकील कहता है—मैं हर एक के लिए वकालत करता हूँ (I plead for everyone)। डॉक्टर कहता है—मैं हरएक के लिए नुस्खा देता हूँ (I prescribe for everyone)। तो हम लोग कहेंगे कि मैं हरएक के लिए 'प्रार्थना' करता

हूँ (I pray for everyone)। इन व्यावसायिक सम्बन्धों के बाहर जहाँ मनुष्य और मनुष्य के हृदय से निकट सम्बन्ध होते हैं और जहाँ ऐसे सम्बन्धों का विकास हो सकता है, उस क्षेत्र में कम्युनिटी (कुटुम्ब) का विकास होगा। मनुष्यों में इतना परिचय हो इतना सम्पर्क हो और इतनी निकटता हो कि वह एक-दूसरे के सुख-दु:ख में स्वभावत: शामिल हो सके। इसके लिए उनको कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है कोई विचार भी नहीं करना पड़ता। साथ रहते हैं, इसलिए स्वभावत: ही शामिल हो जाते हैं।

परस्पराभिमुख

हमारे आर्थिक संगठन का जो क्षेत्र होगा मैंने उसकी कल्पना रखी है। आज हमारे यहाँ आर्थिक संयोजन के लिए कम्युनिटी ब्लॉक डेवलेप-मेंट ब्लॉक आदि बना रहे हैं। ये सारी संस्थाएँ सामयिक और प्रासंगिक होती हैं। हमारी संस्थाएँ मानवाभिमुख होनी चाहिए। मनुष्य परस्पराभिमुख होंगे और संस्थाएँ मानवाभिमुख होंगी। अब वह गाँव होगा कस्बा होगा शहर होगा या सर्वर होगा क्या होगा इन नामों को छोड़ दें। वह मनुष्य की एक ऐसी बस्ती होगी एक कॉलोनी होगी जहाँ मनुष्य परस्पराभिमुख होंगे उनका एक-दूसरे के साथ परिचय होगा। संपर्क प्रत्यक्ष होगा जिसमें पारस्परिक सम्बन्धों के लिए अवसर मिलेगा पारस्परिक सहयोग का बोध होगा। आज तक उत्पादन उपयोग के लिए ही था। लेकिन वह उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के व्यक्तित्व के और मानवता के विकास के लिए होना चाहिए। इसलिए उत्पादन में रसिकता आनी चाहिए, सर्जकता पैदा होनी चाहिए और मानव-निष्ठा भी बननी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि वस्तु के प्रति आदर हो। वस्तु के दो साधन हैं—एक पूँजी एक उपकरण। उपकरण सांस्कृतिक और कलात्मक होना चाहिए।

१९५५-६ (सम्वाद)

कर रहा है वह विवेकयुक्त आक्षेप कर रहा है। लेकिन इसमें एक सत्य है। वह यह कि जिस प्रकार हम समाज में सैनिकों का एक वर्ग हमेशा के लिए नहीं चाहते हैं उसी प्रकार सेवकों का वर्ग भी हमेशा के लिए नहीं चाहते हैं। यह समाज के लिए शोभा की वस्तु नहीं है। जिस प्रकार हम चाहते हैं कि सैनिक और नागरिक में अन्तर न रहे उसी प्रकार हम यह भी चाहते हैं कि समाज में सेवक और सेव्य का भी अन्तर न रहे। इसलिए हम कहते हैं कि हमारे यहाँ ऐसे नेता रहे ही नहीं जिनका नेतृत्व ही व्यवसाय हो।

सेवा व्यवसाय न हो

कैरियरिज्म (Careerism) का मतलब है व्यवसायवाद। हम सार्वजनिक सेवा को और राजनीति को अपना व्यवसाय (Career अथवा Vocation) बना लेते हैं। समाज में ऐसा व्यावसायिक सेवकत्व नहीं होना चाहिए। सभी नागरिक एक-दूसरे के सेवक हैं। सेवा पारस्परिक है। (Service reciprocal है।) कुछ प्रकार की सेवा में कुछ लोग विशेषज्ञ होंगे। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सेवा उनका व्यवसाय होगा। अब हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि समाज में सेवा और व्यवस्था व्यवसाय नहीं होना चाहिए। शासन में 'अनिवार्य सेवा कानून (Essential services regulation) है। समाज के लिए जिनकी सेवा अत्यावश्यक है वे हड़ताल नहीं कर सकते हैं। समाज में यह एक नियम है। भंगी या शिक्षक हड़ताल करते हैं तो एक मर्यादा के बाद राज्य कहता है कि तुमको काम करना पड़ेगा। इसके लिए राज्य विशेष आदेश (Ord a c) निकालता है। अत्यावश्यक और गौण सेवाओं में फरक करना पड़ा इसका मुख्य कारण यह है कि अब तक समाज में सेवा एक व्यवसाय है। व्यवसाय का मतलब जीविका का साधन। सेवा व्यापार और जीविका का साधन नहीं होना चाहिए। सामाजिक संस्थाओं में यह एक

आवश्यक चीज है। नहीं तो समाज-सेवा करनेवाली संस्थाओं का एक इन्द्रजाल फैल जाता है। इन्द्रजाल यह है जो जादू से बनता है, हमको भ्रम में डालता है। इन संस्थाओं और संगठनों का एक चक्रव्यूह बन जाता है, जैसे मुगलों के जमाने में बड़े-बड़े शहरों में भूल-भुलैया होती थी। उसके भीतर जाना आसान होता है, लेकिन बाहर निकलने का कोई दरवाजा उसमें दीखता नहीं है।

समाज का चक्रव्यूह

लोग कहते हैं कि आज समाज बहुत उलझा हुआ यन्त्र हो गया है। इसमें साधारण नागरिक को रास्ता नहीं मिलता है। ग्रीक पुराणों में मैनटॉर नामक एक राक्षस का वर्णन है। वह इसी तरह के एक भूल भुलैया (Labyrinth) म रहता था। उसको बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिलता था। भीतर जो-जो जाते उनको वह खा जाता था। उस शहर की राजकुमारी का थीसियस से प्रेम हो गया। लेकिन जब तक वह राक्षस जीवित रहता वह राजकुमारी से विवाह नहीं कर सकता था। राजकुमारी ने रेशमी धागे का एक रील अपने हाथ में रखा और दूसरा छोर थीसियस के हाथ में दिया और कहा कि इसको लेकर तुम भीतर चले जाओ तो इस डोरे के सहारे बाहर आने का रास्ता मिल जायगा।

हम चाहते हैं कि आज के समाज के इस चक्रव्यूह से बाहर निकल आने के लिए ऐसा कोई धागा हाथ लगे। वह अहिंसक प्रक्रिया में से मिल सकता है। इसलिए हम ऐसी कोई संस्था नहीं चाहते जिसमें स समाज के सेवकों का एक स्थायी वर्ग निर्माण हो और नेताओं का कोई वर्ग निर्माण हो। हम जिस प्रकार सैनिक और नागरिक का भेद मिटाना चाहते हैं उसी प्रकार सेवक और नागरिक का तथा नेता और अनुयायी का भेद भी मिटाना चाहते हैं। आत्म-रक्षण एक-दूसरे का सभी करेंगे। कोई विशेष गुणवान् मनुष्य होगा उसका मार्ग-दर्शन दूसरों को मिलेगा।

मार्ग-दर्शन के लिए कोई एक विधिपूर्वक प्रतिमान की योजना अहिंसक समाज के लिए हानिकर होगी। इसलिए इस सारे इन्द्रजाल में से रास्ता निकालने का हम प्रयत्न कर रहे हैं।

अन्न-केन्द्रित संयोजन

उत्पादन की पद्धति, वितरण की पद्धति, उत्पादन के साधन और उपकरण आदि किसीमें भी हमारा एकान्तिक आग्रह (Dogmatism) नहीं है। जो एकान्तिक आग्रह रखेगा वह क्रान्तिकारी नहीं हो सकता। केन्द्रीकरण की पद्धति हो या विकेन्द्रीकरण की, यह कोई देवता या मन्त्र नहीं है। यह केन्द्रीकरण या विकेन्द्रीकरण सर्वोदय और समाजवाद के प्रत्यभिज्ञान-शब्द या पहचान के शब्द नहीं हैं। इसमें विवेक है और वह यह कि उत्पादन की पद्धति ऐसी हो जिसमें उत्पादक और उपभोक्ता का परस्पर प्रत्यक्ष परिचय और सम्पर्क हो, दोनों में घनिष्ठता के लिए अवसर हो। इसको गांधी ने स्वदेशी कहा। स्वदेशी का अर्थ भौगोलिक राष्ट्रीय नहीं है, वह तो एक सन्दर्भ में था। उत्पादन-पद्धति के बाद उत्पादन के साधनों की बात है। मैंने इसमें भूमि को पहले लिया। वह इसलिए कि हमारा देश भूखों का देश है। देश चाहे भूखों का हो या न हो, जिस देश में अन्न नहीं होगा उस देश की आर्थिक स्वतन्त्रता आगे जाकर हमेशा संकट में रहेगी। कारखानेवालों और व्यापारियों का देश आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र देश अब नहीं रह सकता है। इसलिए आगे का सारा अर्थशास्त्र अन्न-केन्द्रित होगा, इसलिए कृषि-केन्द्रित होगा। अर्थशास्त्र में ऐसा एक सम्प्रदाय था जिसे फिजियोक्रट्स (Physiocrates) कहते थे। अमेरिका में उसका पुनरुत्थान हुआ और हेनरी जार्ज उसका प्रतिनिधि था। उसके आन्दोलन का नाम था 'सिंगल टैक्स (Single Tax) आन्दोलन'। उसका कहना था कि भूमि पर ही कर होना चाहिए और किसी चीज पर नहीं क्योंकि भूमि ही ऐसी है जो कई गुना फल देती है। एकगुना बीज

हो तो सौगुना फल देती है। इसके बाद बीच में व्यापार और उद्योगवाद का युग आया जिसमें कारखाने ही कारखाने हुए हैं। अब हुमारा अनुभव हो रहा है कि जिस देश के पास अन्न न होगा वह देश आर्थिक संकट में रहनेवाला है। दुनिया में लोकसंख्या की समस्या का अर्थ है अन्न-रोजगार की समस्या। मनुष्यों को खाने के लिए अन्न चाहिए। अन्न कारखाने में नहीं बनता है। कहा जाता है कि हमारा देश कृषि-प्रधान है। मैं नम्रता-पूर्वक अध्ययन की दृष्टि से यह सुझाना चाहता हूँ कि भविष्य में सारा आर्थिक संयोजन अन्न-केन्द्रित और कृषि-केन्द्रित होनेवाला है।

किसान-मजदूर-संघर्ष

अन्न-केन्द्रित संयोजन का अर्थ है कि अन्न सुलभ होना चाहिए। यदि अन्न सुलभ नहीं है, तो अन्न के उत्पादन का कोई अर्थ नहीं है। आज सबसे बड़ी शिकायत ही यह है कि अन्न सबको मिलता नहीं। अन्न पैदा करने वाला किसान चाहता है कि अन्न की कीमत काफी मिले और दूसरे सब चाहते हैं कि अन्न की कीमत कम-से-कम हो। किसान एक तरफ है और सारा समाज दूसरी तरफ है। सारा समाज किसान के विरोध में खड़ा है। समाज तो खड़ा ही है लेकिन कारखाने का मजदूर विशेष रूप से खड़ा है। किसान और मजदूर का संघर्ष (Conflict) होता है। हम तो चाहते हैं कि किसान और मजदूर का राज्य हो उनका संगठन हो। इनके संयुक्त संगठन में सबसे बड़ी बाधा यह है कि मजदूर सस्ता अनाज चाहता है और किसान अगर अनाज सस्ता बेचेगा तो उसे उसकी मेहनत का फल नहीं मिलता। मजदूर कहता है कि मेरे काम के घण्टे कम हों और मेरा वेतन अधिक-से-अधिक हो। मजदूर का वेतन बढ़ा दिया जाय और काम के घण्टे कम कर दिये जायें तो भी किसान के काम के घण्टे कम नहीं होंगे और उसका वेतन भी नहीं बढ़ेगा क्योंकि वह वैतनजीवी नहीं है। किसान स्वयं मालिक है इसलिए अनाज का भाव गिरता है तो वह दुःखी होता है।

और वह बैठ जाता है, तो मजदूर दुःखी होता है। इसे एशियाई समाजवाद कहा है। मार्क्स को इसका विचार करना पड़ा और हमारे यहाँ अशोक मेहता ने किया है। कम्युनिस्टों में शंकरन् नम्बूदीपाद ने किया है। बाकी लोग कुछ कट्टर (Orthodox) समाजवादी हैं। वे केवल मजदूर-आन्दोलन का विचार करते हैं समग्र विचार नहीं। अर्थशास्त्र में एक मर्यादा है कि अन्न की अपेक्षा कच्चा माल महँगा होता है और कच्चे माल की अपेक्षा पक्का माल अधिक महँगा होता है। यदि अन्न की अपेक्षा कच्चा माल महँगा होता है तो सवाल यह है कि किसान अन्न पैदा करेगा या कच्चा माल ? कच्चे माल की अपेक्षा पक्का माल महँगा होता है, तो वह गन्ना बेचे गन्ने का रस बेचे या गुड़ बेचे ? और अन्तिम मर्यादा यह है कि कच्चे माल की अपेक्षा व्यापारी माल और भी महँगा होता है जैसे तम्बाकू। अब किसान तम्बाकू क्यों न बोये ? इस प्रकार अन्न के उत्पादन की प्रेरणा क्षीण हो गयी है।

ग्रामीकरण

इस समस्या का उत्तर ग्रामदान के सिवा दूसरा नहीं है। अन्न अगर सस्ता चाहिए तो एक ही उत्तर है कि अन्न बाजार में बेचने की चीज नहीं होनी चाहिए। अन्न अगर बाजार में बिकने नहीं जायगा तो उसके उत्पादन का साधन यानी भूमि बाजार में बिकनी नहीं चाहिए। भूमि अगर बाजार में नहीं बिकने जायगी तो फिर बैल भी बाजार में नहीं बिकने जायगे। इसका अर्थ हुआ अन्न का ग्रामीकरण हो, अन्न के उत्पादन के साधनों का ग्रामीकरण हो। और अन्न के उत्पादन के उपकरणों का ग्रामीकरण हो। इस ग्रामीकरण का नाम विनोबा ने ग्रामदान रखा है। गाँव का ग्रामीकरण होना चाहिए—यह वैज्ञानिक विचार है। जिस देश में मुख्य सबसे बड़ी समस्या है उस देश को यह समझ लेना चाहिए कि अन्न का अभाव अम है। और अन्न के उत्पादन के लिए जो साधन

चाहिए, उसमें सबसे महत्त्व का साधन है जमीन। लेकिन आज के अर्थशास्त्र में श्रम सबसे सस्ता है। श्रम से कच्चा माल महँगा है, कच्चे माल से पक्का माल महँगा है पक्के माल से व्यापारिक माल महँगा है, और इसका परिणाम यह है कि अन्न के उत्पादन की प्रेरणा नहीं रही है।

दूसरा विरोध (Conflict) यह है कि मजदूर को अन्न सस्ता चाहिए और किसान चाहता है कि अन्न की कीमत अच्छी हो। यह किसान और मजदूर का मूलभूत विरोध है। इसका संबंध का विचार कट्टर समाजवाद नहीं करता और कट्टर साम्यवाद भी नहीं करता। यदि विचार होगा तो उसमें यह विवेक होगा कि संयोजन कृषि-केन्द्रित और श्रम-केन्द्रित होगा। मानव-केन्द्रित संयोजन का अर्थ है श्रम-केन्द्रित संयोजन।

जैसा मैंने कहा हम यहाँ केन्द्रीकरण विकेन्द्रीकरण ग्रामोद्योग नगरोद्योग आदि को छोड़ दें। ग्रामोद्योग सर्वोदय है, नगरोद्योग सर्वोदय नहीं—इस तरह का विचार छोड़ दीजिये। बात यह है कि जितनी आवश्यकता है उत्पादन उतना होना चाहिए। इसमें विवेक यह है कि मनुष्य और पशु का काम यन्त्र न छीने। दुनिया में कम-से-कम एक देश है, जिसने पशु-हत्या न करने का कम-से-कम एक पशु की हत्या न करने का संकल्प किया है। ऐसे देश में मनुष्य और पशु-शक्ति का विनियोग उत्पादन में होना चाहिए। इसे यन्त्र-विवेक कहते हैं। उत्पादन के साधन और व्यवस्था का उपयोग मनुष्य के लिए होना चाहिए। हम संस्थाओं और संगठनों को मानवाभिमुख बनाना चाहते हैं। मैंने कहा कि सामाजिक क्षेत्र में सैनिक और नागरिक का तथा सेवक और नागरिक का भेद नहीं होगा राजनैतिक क्षेत्र में नेता और अनुयायियों में भेद नहीं होगा इनका अलग वर्ग नहीं होगा। इसका मतलब है सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में सेवा का व्यवसायीकरण नहीं होगा। अब आर्थिक क्षेत्र में संयोजन किस प्रकार का होगा? संस्थाओं और संगठनों के चक्रव्यूह में से बाहर

जाने के लिए यह जाना है कि अन्न सुलभ हो। बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए अन्न का उत्पादन हो। और यह ग्रामीकरण और ग्रामदान के सिवा और किसीसे नहीं हो सकता। यह वैज्ञानिक उत्तर है। आज यह ग्रामदान हो या न हो, विनोबा सफल हो या न हो, इसके सिवा दूसरा उत्तर नहीं है।

अविरोधी सहयोग हो

संस्थाओं और संगठनों को परखने के लिए हमारे पास दो पैमाने हैं— विरोध के बिना सहयोग (Cooperation without Antagonism)। आज जितना भी सहयोग होता है, वह किसी-न किसीके विरोध में होता है। कार्यकर्ता कहते हैं कि भूदान ग्रामदान आन्दोलन में जोश नहीं पैदा होता है। जोश क्यों नहीं? इसलिए कि यह संगठन किसीके खिलाफ नहीं है। समाजवादी व्यवस्था में मुख्य तत्त्व सहयोग है लेकिन क्या सहयोग के लिए विरोध और संघर्ष आवश्यक होगा? सवाल यह है कि सहयोग विधायक होगा या निषेधक? इसलिए अहिंसक संगठन की परीक्षा 'विरोध के बिना सहयोग' में है। जबर्दस्ती के बिना संयोजन होना चाहिए। संस्थाओं और संगठनों में सामञ्जस्य और अविरोध होना चाहिए। समन्वय होना चाहिए। और इस समन्वय के लिए बलप्रयोग की आवश्यकता न पड़नी चाहिए। थोड़ी-बहुत होगी लेकिन कम-से-कम होगी। सही माने में कम-से कम तब होगी जब बिल्कुल न होने देने का संकल्प हो। आज तक का अनुभव यह है कि सहयोग और समन्वय के लिए एक सामान्य विरोधी की आवश्यकता होता है। इसको हमने यूनियनवाद (Unionism) कहा। कोई न कोई प्रतिपक्षी जरूरी है और वह मनुष्य ही होना चाहिए। वह वस्तु हो तो जोश नहीं आयगा। संगठन में शक्ति तभी आती है जब प्रतिपक्षी मानव हो। इसलिए मैंने कहा था कि हमारी संस्थाओं और संगठनों का काम यह होना चाहिए कि सार्वजनिक समस्या और सार्वजनिक प्रतिपक्षी

को यह करके नहीं तो वे क्रान्तिकारी नहीं होंगी। हमारी संस्थाओं का प्राथमूत तत्त्व अहिंसा है। जहाँ अहिंसा प्राथमूत तत्त्व है, वहाँ यह नहीं हो सकता कि कोई सामान्य विरोधी हो और मानव-विरोधी हो। लेकिन आज किसी भी संस्था में शक्ति-संचार करना हो तो यह कहना पड़ता है कि अमुक को परास्त करना है।

सगठनों की शक्ति ?

पहले राजनैतिक संगठन को लें। आज इन राजनैतिक पक्षों में ताकत कहाँ से आती है? आज जिनके हाथ में सत्ता है, उनके हाथ से सत्ता हमें लेनी है—इस विचार से आती है। लोग हमसे कहते हैं कि सर्वोदय जब तक राजनीति में नहीं पड़ता यानी इन जब तक सत्ताकांक्षी नहीं बनते तब तक हमारी जीत नहीं होगी सत्ता के लिए जब तक हम संघर्ष नहीं करते तब तक सर्वोदय में शक्ति नहीं आयेगी। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भी यही होता है। दो राष्ट्रों में द्वेष रहना चाहिए या कम-से-कम स्पर्धा होनी चाहिए। आन्तरिक एकता और बाहर बैर (Rivalry) चाहिए। दूसरा राष्ट्र या तो हमारा विरोधी होगा या प्रतिस्पर्धी होगा। यह राजनीति का स्वरूप है।

सैनिक संस्था को समझने के पहले शस्त्र और उपकरण में क्या अन्तर है यह देखना होगा। चाकू में और तलवार में क्या अन्तर है? चाकू से भी गरदन काटी जा सकती है लेकिन किसीने चाकू से यदि किसी की गरदन काट दी तो कहेंगे कि चाकू का दुरुपयोग हुआ। तलवार से तरकारी काटना तलवार का दुरुपयोग है। फिर तलवार का सदुपयोग क्या है?—गरदन काटना। जिसका सदुपयोग ही दोषपूर्ण है उसका नाम शस्त्र है। इसलिए निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता है। शान्ति और अहिंसा के लिए निःशस्त्रीकरण क्यों चाहिए? इसलिए कि शस्त्र जन्म से हिंस्र है, मानवविरोधी है। जिसका सदुपयोग सदुपयोग है दुरुपयोग दुरुपयोग है उसका नाम औजार है। दोनों में यह बहुत बड़ा अन्तर है।

इसीलिए सभी लोग सेना को समाप्त करना चाहते हैं। सभी पक्षों की प्रतिज्ञा है कि सैनिक न रहें।

तीसरा है आर्थिक संगठन। वैसे आर्थिक शैक्षणिक धार्मिक यात्रा यातायात सम्बन्धी आदि कई संगठन हैं पर ये सब परस्पर गुँथे हुए (Interlocked) हैं। इनमें से एक संस्था प्रमुख है और वह है राज्य-संस्था। सारे आन्दोलनों में जिसे कुंजी का आन्दोलन कहते हैं वह है राजनैतिक आन्दोलन। जहाँ राज्य और राजनीति है वहाँ मत्सर है, और इसलिए युद्ध आदि होते हैं। सवाल पूछा गया कि क्या युद्ध के बिना राजनीति हो सकती है, तो एक बड़े राजनीतिज्ञ ने जवाब दिया कि—युद्ध के बिना राजनीति हो सकती है, लेकिन राजनीति के बिना युद्ध नहीं हो सकता। युद्ध के बिना राजनीति हो सकती है। वैसी राजनीति का मुँह लोकनीति की तरफ हो जाता है उसका रुख बदल जाता है। वह राजनीति राज्याभिमुख नहीं रहती लोकाभिमुख बन जाती है। जो राजनीति लोकाभिमुख हो जाती है उसमें युद्ध और संघर्ष कम-से-कम होता है और अन्त में समाप्त हो जाता है। लेकिन आज सेना ही मुख्य है। आज की राज्य व्यवस्था दण्ड-प्रधान है। विज्ञान की अन्तिम प्रतिष्ठा [illegible] है तो पुलिस और सेना प्रमुख संस्थाएँ हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि राज्यतन्त्र पर सेना का प्रभाव होता है। स्टालिन सेनापति था। आइज़न हावर सेनापति था। नासिर अयूब आदि को देखते जायें तो हेराल्ड मैकमिलन [illegible] नेहरू जैसे कुछ इनेगिने लोगों को छोड़कर बाकी सभी जगह सेना या सेनापति का ही प्रभुत्व है। अब लोगों की धारणा बन गयी है कि राजनीतिज्ञ से सैनिक अच्छा है। इसका मतलब यह हुआ कि [illegible] आम स्वतन्त्रता [illegible] पराधीनता या [illegible] व्यवस्थाप्रिय हो रहा है [illegible] स्वातन्त्र्यप्रेम [illegible] अब [illegible] (व्यवस्थावादी वाद) का [illegible] बन रहा है। सम्पन्न-[illegible] स्वतन्त्रता की आकांक्षा से अधिक [illegible] इसमें मानवता का आघात है, लोकतन्त्र का विनाश

है। इससे लोकतन्त्र धीरे-धीरे समाप्त होनेवाला है। आज युद्ध का देवता समाज का मुख्य देवता हो रहा है। महाराष्ट्र में शिवाजी का आज महत्त्व है। यह इसलिए नहीं कि वह साधु-पुरुष था बल्कि इसलिए कि उसके हाथ में तलवार थी। वह संघर्ष का प्रतिनिधि है। आज विज्ञान का महारथ और युद्ध-देव दोनों जुड़ गये हैं। आज के सत्ता-युग का अर्थ ही युद्ध-युग है। विनोबा यह कहते हैं कि राजनीति से अब समस्या हल नहीं होगी। कहने का मतलब यह है कि आज विपरीत संस्थाओं का जो आपसी गठ-बन्धन (Inter locking) है, उसके परिणाम-स्वरूप युद्ध विश्व का सबसे बड़ा कारोबार हो गया है और सारा व्यापार युद्ध के आधार पर चलता है।

अमरीका यदि शस्त्र न बाँटे तो वहाँ शस्त्रास्त्रों के कारखाने बन्द हो जायँगे। अगर वे कारखाने बन्द हो जायँगे तो बहुत से लोग बेकार हो जायँगे। इसलिए मुफ्त में शस्त्र बाँटना क्यों न पड़े शस्त्र बनायेंगे जरूर। शस्त्रों का उत्पादन करना उनके लिए आवश्यक है, जिसका अब अमरीका के लिए कोई वास्तविक उपयोग नहीं है। इस अणुयुग में अब निःशस्त्रीकरण की कोशिश चल रही है, उसके बावजूद वे शस्त्रों का उत्पादन बन्द नहीं कर सकते क्योंकि इन बड़े देशों के बड़े-बड़े कारखाने के लोगों को काम देना पड़ता है। अब हमारा व्यापार युद्ध का ही है। युद्ध होता है तो चीजों का भाव बढ़ता है और बेकारों को रोजगार मिलता है। समाज में जो किसी काम के लिए योग्य नहीं समझा जाता है युद्ध होगा तो उसे भी कुछ-न-कुछ काम मिल ही जाता है। उसे अपने को उपयोगी समझने का अवसर मिलता है। इसलिए जहाँ हमें जरा भी आशंका नहीं है, उस बीच में भी लोग युद्ध-प्रिय बन जाते हैं।

इस स्थिति में विज्ञान युद्ध की अमोघ सामग्री देता है युद्ध चलाने वाले लोग विधान संस्थाओं में से आते हैं। व्यापारी संस्थाएँ युद्ध की निर्जीव सामग्री देती हैं वस्तुओं और धन्धों के रूप में तब औद्योगिक संस्थाएँ

सहायता करती हैं। युद्ध के लिए जिस भावना (Emotional content) की आवश्यकता होती है, वह धर्म देता है। संचार और समाचार संस्थाएँ इन सबका प्रचार करती हैं जन-मानस बदलती हैं। कहा जाता है सिनेमा का सांस्कृतिक उपयोग किया जाता है, कहते हैं सिनेमा हमारा वह साँचा है जिसमें डालकर मनुष्य को हम आकार दे सकते हैं। वे मनुष्य को एक विशिष्ट ढाँचे में ढालना चाहते हैं।

गठबन्धन तोड़ें

यह सब युद्ध-प्रियता को बढ़ाने के लिए होता है। क्योंकि युद्ध-प्रियता जब बढ़ेगी तब मनुष्य अपने राष्ट्र को दूसरे राष्ट्रों से ज्यादा श्रेष्ठ मानेगा। नहीं तो युद्ध-प्रियता नहीं बढ़ सकती। इसके लिए वैज्ञानिकों का उपयोग होता है। निःशस्त्रीकरण में यह भी एक शर्त है कि आणविक संशोधन बन्द होना चाहिए। अणु-शक्ति का संशोधन बन्द हो इस दृष्टि से आज उसका संशोधन हो रहा है। लेकिन आज विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक भ्रष्ट हो रहा है। कालेज में एक प्रोफेसर को पाँच सौ सात सौ रुपये वेतन देते हैं। लेकिन टाटा बिड़ला या मोदी दस-बीस हजार तक देता है। इसलिए उत्तम और सुयोग्य व्यक्ति व्यापारी-संस्थाओं में जाते हैं। युद्ध के लिए संशोधन होता है, तो इससे भी अधिक वेतन मिलता है। वैज्ञानिकों का आकर्षण फिर उधर होता है। इस प्रकार का भ्रष्टाचार पहले धर्म के क्षेत्र में आया धार्मिक पुरुष भ्रष्ट हुआ। अब वैज्ञानिक भी भ्रष्ट हो रहा है। विज्ञान और वैज्ञानिकों का नियन्त्रण आज सत्ता सत्ताधारी और सेनाधिकारी यानी राज्य और सेना कर रहे हैं। इस प्रकार सारी संस्थाएं एक-दूसरे से गुँथी हुई (Inter-locked) हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों में शान्ति की युद्ध का अन्त करने की आकांक्षा होते हुए भी तैयारियाँ शान्ति की नहीं हो रही है। शान्ति का संशोधन इसलिए नहीं हो रहा है कि आज युद्ध के साधन और उपकरण

सर्वनाश के साधन और उपकरण बन गये हैं। इनका प्रयोग तो नहीं हो सकता लेकिन युद्ध की भयंकरता बढ़ रही है और इस प्रकार युद्ध के सन्नीकरण का आकर्षण बढ़ रहा है। युद्ध का जितना सन्नीकरण होगा उतनी मनुष्य की मनुष्यता क्षीण होती चली जायगी। दो लड़के लाठियों से लड़ रहे हैं इससे अधिक हानि नहीं है। बहुत हुआ तो लाठियाँ टूट जायेंगी। उन्हें समझाना काफी है। दो आदमी बन्दूक लेकर लड़ रहे हैं, तो उनको रोकना चाहिए। अगर दोनों के हाथ में बम हो तो उनके बीच में खड़ा होना चाहिए, नहीं तो अनर्थ होगा। जिस प्रकार उत्पादन और उत्पादन के साधन के साथ हुआ है, उसी प्रकार युद्ध के शस्त्रास्त्रों की प्रगति के साथ भी हुआ है, इनमें जैसे-जैसे प्रगति होती गयी उसके साथ ही मनुष्य की वीरता क्षीण हुई है और संहार की सम्भावना बढ़ रही है। इसलिए इन सभी संस्थाओं का यह आपसी सम्बन्ध बदल देना चाहिए।

कौटुम्बिक समाज

इन सबका क्रम जब तक हम नहीं बदलेंगे तब तक इस चक्र-व्यूह को भेद नहीं सकेंगे। इस चक्रव्यूह से हमको बाहर निकल जाना चाहिए। ऐसा कौटुम्बिक समाज (Community) निर्माण करना चाहिए जहाँ सभी उत्पादक हों और सभी उपभोक्ता हों। एक उत्पादक सहकारी समिति एक उपभोक्ता सहकारी समिति या एक सेवा-सहकार समिति नहीं होगी। उत्पादन विक्रय के लिए या विनिमय के लिए नहीं होगा एक-दूसरे के लिए होगा। लोगों में इतनी प्रतिष्ठा होगी कि जितना आवश्यक है उतना उत्पादन करेंगे। आवश्यकता से अधिक भी उत्पादन करेंगे पर वह भी एक दूसरे के लिए करेंगे बेचने के लिए नहीं। अतिरिक्त उत्पादन का पड़ोस के क्षेत्र से संविभाजन (Sharing) होगा। यह सहकारी पूँजीवाद नहीं है ग्रामीण भू-स्वामित्वाद नहीं है एक तरफ लेनदार और दूसरी तरफ दिवालदार ऐसा विरोध नहीं है। काम का

समाज शस्त्र-नियन्त्रित समाज है, पुलिस स्टेट है। इसका नाम जनता का लोकतन्त्र रखा है। इसमें व्यवस्थापकवाद है, निजी स्वामित्व को स्थान है, वर्ण रचना नियन्त्रित है, इसी प्रकार कई विरोध हैं। लेकिन मैंने यहाँ एक सामंजस्यपूर्ण समाज-व्यवस्था का चित्र रखा है।

आज पूरा-का-पूरा आयोजन युद्ध-प्रवण है। इसलिए अधिक-से-अधिक बुद्धि-शक्ति भावना-शक्ति द्रव्य-शक्ति श्रम-शक्ति आदि सबका उपयोग सेना के लिए हो रहा है। इसलिए सारी संस्थाओं पर सैनिकता का रंग चढ़ रहा है। इसका रूप बदल देना है। •

१६-५-६ (माउ)

हमारे सामने सबसे महत्त्व का प्रश्न यह है कि अपने जीवन में तथा समाज के जीवन में सत्यनिष्ठा का विकास और सत्याचरण करने के लिए क्या प्रतीकार की आवश्यकता है? हमको अपना जीवन सत्यमय बनाना है, सामाजिक जीवन में सत्यनिष्ठा के विकास के लिए अपना जीवन सत्यमय बना लेना आवश्यक है। हमारा जीवन भी सत्यनिष्ठ बने और हमारा सामुदायिक जीवन या समाज-जीवन भी सत्यनिष्ठ बने इसके लिए हम एक-दूसरे के साथ सहयोगी बनें सत्याचरण में एक-दूसरे को प्रोत्साहन दें सलाह दें एक-दूसरे की सहायता करें, यह सब तो समझ में आता है। लेकिन इसमें प्रतीकार का क्या स्थान है, यह प्रश्न है।

भिन्न सत्य-दर्शन

प्रतीकार के लिए दो अवसर हैं। एक अवसर तब आता है, जब मेरी बुद्धि जिसे सत्य मानती है, उसे आपकी बुद्धि सत्य नहीं मानती है। मनुष्य के पास सत्य के निर्णय का साधन उसकी शुद्ध बुद्धि है। शुद्ध बुद्धि का मतलब है—स्वार्थ-रहित और विकारहीन बुद्धि। यह शुद्ध बुद्धि जिस मनुष्य के लिए अभ्यास का एक निर्भ्रान्त प्रमाण बन जाती है, उसकी प्रेरणा भी शुद्ध होती है। प्रेरणा यदि शुद्ध है तो उसकी अन्तःस्फूर्ति भी प्रमाण बन जाती है। इसे अन्तःप्रेरणा (Intuition) कहते हैं यही ईश्वरीय वाणी है। गांधीजी इसे अन्तर्वाणी कहते थे। हम यह अन्तर्वाणी आदि शब्दों का प्रयोग न करें। विनय हमें यही सिखाती है। हम इतना ही कहें कि यह मेरी शुद्ध बुद्धि का निर्णय है, मेरी शुद्ध बुद्धि इस परिणाम पर पहुँची है। अब मेरी शुद्ध बुद्धि का एक निर्णय है और आपकी शुद्ध बुद्धि का दूसरा विषय है। आपकी बुद्धि को अशुद्ध

बुद्धि कहने का अधिकार मुझे नहीं है। मैं आपको सत्य का अपना दर्शन समझाना चाहता हूँ। इसके पहले आपका दर्शन समझना चाहता हूँ। आपका दर्शन मेरी समझ में आ जाय तो मैं उसका ग्रहण कर लेता हूँ। मेरी बुद्धि उसका स्वीकार न करे, तो आपको समझाने की मैं कोशिश करूँगा। आप अपने दर्शन के अनुसार आचरण करने लगते हैं और उस आचरण को मैं भ्रान्ति-मूलक और गलत मानता हूँ तब प्रतीकार का प्रश्न आता है। यह प्रतीकार का एक प्रसंग है। समाज को सत्यनिष्ठ बनाने के लिए एक-दूसरे को सत्यनिष्ठ बनने में मदद करें सहयोग करें यह स्वाभाविक है लेकिन जहाँ सत्यदर्शन में भेद आता है और उस भेद के कारण सत्याचरण में विरोध पैदा होता है, वहाँ प्रतीकार का प्रसंग आता है।

अशुद्ध आचरण

प्रतीकार का दूसरा प्रसंग वहाँ आता है जहाँ स्वार्थ अन्याय और प्रभुत्व की स्थापना के लिए लोभ और मद-मूलक आचरण होता है। प्रतीकार के ये दो प्रसंग हैं। सत्याचरण की ये दो मर्यादाएँ हैं, इनको ध्यान में रखना है। सत्याग्रह युद्ध का पर्याय नहीं है। विलियम जेम्स ने एक शब्द का प्रयोग किया था—Moral equivalent of war—(युद्ध का नैतिक तुल्य पर्याय)। हमको युद्ध का तुल्य पर्याय पेश करना है। नैतिक पर्याय तो है लेकिन तुल्य पर्याय नहीं है। जहाँ धर्म-युद्ध होता है वहाँ भी धर्म गौण हो जाता है, बल-पराक्रम मुख्य होती है। यह पुराने जमाने की बात नहीं है, इन दिनों के धर्मयुद्ध की बात कह रहा हूँ। पुराने जमाने के धर्म-युद्ध में बलपराक्रम गौण होती थी धर्माचरण मुख्य होता था लेकिन आज अपने धर्म और अपने मत की स्थापना के लिए, अपने मन्दिर, मठ आदि की प्रतिष्ठा के लिए या अपने देवता की शान्ति के लिए जो धर्मयुद्ध होते हैं, इनमें धर्माचरण गौण हो जाता है

और क्षमापनय मुख्य होता है। इसलिए इनके उद्देश्य सम्मिश्र होते हैं शुद्ध नहीं होते। इस सम्मिश्र उद्देश्य (Motivation mixture) में सत्य का अंश और सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा का आग्रह नहीं है। सफल भले ही न हो लेकिन सत्यनिष्ठा परिपूर्ण होनी चाहिए। सम्मिश्र उद्देश्य में बुद्धि भ्रष्ट होती है और हृदय कलुषित होता है। इसलिए इस उद्देश्य से हम बचना चाहते हैं। आजकल इतने सत्याग्रह होते हैं, इतने उपवास होते हैं फिर भी वातावरण की शुद्धि क्यों नहीं होती है? सामाजिक जीवन क्यों शुद्ध नहीं होता? अगर यह सत्याग्रह है, तो उसकी परीक्षा एक ही है और वह यह कि जो व्यक्ति या जो समूह सत्याग्रह करता है, कम-से-कम उसकी तो शुद्धि होनी ही चाहिए, उसकी सत्यनिष्ठा बढ़नी चाहिए। यह नहीं होता है। इसका कारण यह है कि इन सत्याग्रहों का उद्देश्य सम्मिश्र होता है। इस सम्मिश्र उद्देश्य के कारण बुद्धि-भ्रंश पैदा होता है, हृदय कलुषित होता है। इस समस्या को समझ लेना आवश्यक है।

प्रचार की कसौटी

विनोबा ने एक बार कहा था कि सत्याग्रह का प्रकाशन होगा प्रसिद्धि नहीं निवेदन होगा विज्ञापन नहीं। सत्याग्रह का प्रचार यद्यपि सत्य प्रकट करेगा लेकिन वह पूरा सत्य नहीं प्रकट करेगा। पूरे सत्य के प्रचार का मतलब यह है कि प्रतिपक्षी के पक्ष में जो सत्य है, उसका भी प्रतिपादन होना चाहिए। क्योंकि सत्याग्रही उसको समझने की कोशिश करता है। चूँकि सत्याग्रह में समझाने का साधन ही मुख्य साधन है, इसलिए प्रतिपक्षी के पक्ष में जितना सत्य है, जितना गुणांश है उसको समझने की निरन्तर चेष्टा रहती है। इसलिए सत्याग्रह का प्रचार और प्रतिपादन करते समय प्रतिपक्षी के सत्य का भी प्रचार और प्रतिपादन करेगा। आज यह नहीं होता है। इसलिए सारे सत्याग्रहों का परिणाम भिन्न हो जाता है, भूमिका बदल जाती है और सत्याग्रह भ्रष्ट हो जाता है। युद्ध में जो होता है, वही सत्याग्रह में और अहिंसक प्रतीकार में होता है। युद्ध में सामाजिक आलोचकों

और व्यापारियों के लिए एक टॉनिक (Tonic) मिल जाता है, उत्तेजना मिलती है। चोर-बाजारी और सामाजिक षड्यन्त्रकारियों को अवसर मिलता है। सत्याग्रह में ऐसा नहीं होना चाहिए, और यही सत्याग्रह में और युद्ध में एक मूलभूत अन्तर है। इसलिए सत्याग्रह युद्ध का पर्याय नहीं है। यह कहना ठीक नहीं है कि सत्याग्रह भी एक संघर्ष ही है जिसमें हत्या और वध का निषेध है। हत्या और वध का निषेध होने मात्र से सत्याग्रह नहीं होता है। उसे शान्तिपूर्ण युद्ध कह सकते हैं। निःशस्त्र युद्ध कभी-कभी शस्त्र-युद्ध से भी अधिक सफल हो जाता है। स्त्री की शारीरिक शक्ति पुरुष से कम है। पुरुष उसकी बात नहीं मानना चाहता है, तब वह कुएँ में जाकर प्राण देना चाहती है। पुरुष पर वह कोई आघात या प्रहार नहीं करती है। लेकिन यह अहिंसा नहीं है, शान्तिमय निःशस्त्र पैंतरा है। यह पुरुष को परेशान करता है और अन्त में झुका देता है। यह सत्याग्रह नहीं है। सत्याग्रही में प्रतीकार तो है, लेकिन अहिंसात्मक पुरुषार्थ है, अहिंसात्मक पराक्रम है। इसमें विशेषण पर यानी 'अहिंसात्मक' पर मुख्य भार है। इसका मतलब यह है कि प्रतिपक्षी को क्लेश और कष्ट पहुँचाने की जितनी प्रवृत्ति और शक्ति होगी उतना क्लेश और कष्ट खुद सहने की शक्ति और तत्परता होगी। यह युद्ध और सत्याग्रह में दूसरा अन्तर है।

सत्याग्रह का परीक्षा

सत्याग्रह क्या दूसरे को दण्ड देने के लिए है? क्या यह हिंसा का दूसरा पहलू है? यह प्रतीकार का पहलू है। कभी-कभी प्रतिहिंसा या बदले का भी पहलू होता है। तीसरा है दण्ड। दण्ड में और व्यक्तिगत हिंसा में अन्तर है। व्यक्तिगत हिंसा का नाम बदला है, समाज में न्याय के अनुकूल विधान के अनुसार हिंसा के प्रयोग का नाम दण्ड है। यह समाज-मान्य होता है। दण्ड ने व्यक्तिगत हिंसा को समाप्त कर दिया। एक-दूसरे का व्यक्तिगत बदला लेने के बजाय सामाजिक दण्ड दाखिल कर

किया है। सत्याग्रह क्या उस दण्ड का पर्याय है? सत्याग्रह यदि दण्ड का पर्याय नहीं है, तो फिर उसका उद्देश्य क्या है? दूसरे को परास्त करना है? दण्ड देना है? दण्ड देकर परास्त करने का मतलब यही होता है कि दूसरे को अपने अधीन बना लेना। क्या सत्याग्रह दूसरे को परास्त करके अपने अधीन बना लेने के लिए है?—नहीं। वास्तविक सत्याग्रह दूसरे की बुद्धि को समाधान देने के लिए है। इसे Conviction कहते हैं। हृदय को बदलना इसके बाद की बात है। यह 'कर्म' नहीं है। कभी हृदय से बुद्धि तक पहुँचेंगे तो कभी बुद्धि से हृदय तक पहुँचेंगे। दोनों होने चाहिए। उसका दिल बदलेगा और उसका दिमाग आपकी बात मानेगा। उसका सिर्फ दिल बदलता है, उसका दिमाग आपकी बात नहीं मानता है। समझ लेना चाहिए वही अहिंसक दबाव है।

सन् १९९ में 'की नामक एक अमरीकी लेखक ने एक पुस्तक लिखी—Non-violent Coercion वह कहता है कि यदि अहिंसक ढंग से ही क्यों न हो पर दबाव से उसका दिल बदल देते हैं या किसी तरह द्रवित कर देते हैं, तो भी यह नहीं हो सकता कि उसका मन-परिवर्तन हो गया। छोटा लड़का फाउण्टेनपेन चाहता है। जिद करता है। कहता है—अभी पेन नहीं मिलती है तो स्कूल नहीं जाऊँगा। बाप समझा देते हैं और मना लेते हैं। वह समझ लेता है, पेन नहीं मिलेगी। अब वह पैंतरा बदल देता है। गरम धूप से तपे हुए टेबुल पर लेट जाता है। कहता है कि जब तक पेन नहीं मिलेगी मैं यहाँ से उठनेवाला नहीं हूँ। अब इसमें तितिक्षा है, कष्ट-सहन है, त्याग है, बलिदान है लेकिन पेन मिलना चाहिए यह उसका उद्देश्य है। बापका हृदय द्रवित हो जाता है, लाचार हो जाता है। इसमें दबाव है conviction (मत-परिवर्तन) नहीं।

सत्याग्रह का हेतु

सत्याग्रह में मुख्य वस्तु है, मत-परिवर्तन। उसके बाद की वस्तु है

हृदय-परिवर्तन। कभी हृदय-परिवर्तन के द्वारा मत-परिवर्तन होगा और कभी मत-परिवर्तन के द्वारा हृदय-परिवर्तन होगा। मत-परिवर्तन (Intellectual Conviction) पहले होगा या बाद में—यह सवाल बिलकुल अलग है। लेकिन यह होना चाहिए, उसकी बुद्धि को सन्तोष होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि उसकी बुद्धि आपकी बात मान लेती है, बल्कि यह है कि उसकी समझ में आ जाता है कि आप जो कुछ कर रहे हैं, वह सत्य-निष्ठा के कारण कर रहे हैं इसमें आपका कोई अन्तस्थ उद्देश्य नहीं है। आपका सत्य-दर्शन अपूर्ण होगा भ्रान्त होगा लेकिन आप जो सत्य देखते हैं, उसके आचरण के लिए यह कर रहे हैं—इतना प्रत्यय उसके मन में पैदा हो जाता है और यह प्रत्यय आपके मन में विश्वास पैदा करता है।

यहाँ दो राष्ट्रों के बीच युद्ध हुआ—हिंसक या अहिंसक जो भी हुआ सो हुआ लेकिन अंग्रेजों के मन में गांधी के लिए जितना विश्वास था उतना दुनिया के इतिहास में किसीके मन में अपने किसी प्रतिपक्षी के लिए नहीं था। उनको विश्वास था कि यह जो कुछ करता है वह सत्य के प्रत्यय के लिए करता है। इसलिए उसके सत्याग्रह में कभी कटुता पैदा नहीं हुई, परस्पर द्वेष पैदा नहीं हुआ। यह सत्याग्रह की परीक्षा है। इसका एक कारण यह है कि गांधी के हृदय में अपने प्रतिपक्षी के लिए मनुष्य के नाते स्नेह था उसकी मनुष्यता के प्रति आदर होना स्नेह होना सत्याग्रह का बहुत बड़ा लक्षण है।

इससे वातावरण में केवल पवित्रता नहीं मधुरता भी आती है। यह वस्तु पहले धर्म-युद्ध में आती थी वहाँ धर्म-निष्ठा अधिक होती थी। सामान्य धर्म-युद्ध में भी वीरता के आचरण में मधुरता आती थी। यहाँ तो प्रेम और स्नेह है इसलिए मधुरता अधिक आयेगी। इसका यह अर्थ है कि सत्याग्रही के लिए शान्ति रण-नीति नहीं है। रण-नीति से मतलब युद्ध का

एक तरीका। शान्ति इसके लिए लड़ाई का एक तरीका या पैंतरा नहीं है। जहाँ शान्ति केवल एक तरीका या पैंतरा हो वहाँ उस युद्ध से शान्ति की स्थापना नहीं होगी।

सत्याग्रह-दर्शन

सत्याग्रह केवल शान्ति-स्थापना के लिए नहीं है। सत्याग्रही के लिए अहिंसा और शान्ति जीवन-नीति है एक समग्र जीवन का दर्शन है। उसके मन में प्राणिमात्र के लिए स्नेह होता है। इसलिए विजय पाने का एक अमोघ उपाय सत्याग्रह नहीं है। हमें एक अच्छा उपाय मिल गया है— इस दृष्टि से वह सत्याग्रह की तरफ नहीं देखता है, उसका उद्देश्य यह नहीं है। इसलिए यह काफी नहीं है कि हम हिंसात्मक कृति न करें। यह तो हम निःशस्त्र प्रतीकार (Passive Resistance) में भी करते हैं हड़ताल में भी करते हैं, सविनय कानून भंग में भी करते हैं। जब बड़े परिमाण में कानून की सविनय अवज्ञा (Civil Disobedience) होने लगी थी तब विनोबा ने कहा था कि इसमें मैं सत्याग्रह नहीं देखता हूँ।

सामूहिक सत्याग्रह का अर्थ

हम चाहते हैं कि प्रतिपक्षी हमारी बात माने और प्रतिपक्षी चाहता है कि हम उसकी बात मानें। बुद्धि-प्रयोग कुंठित हो गया है। समझाने से काम नहीं होता है। ऐसी जगह प्रतीकार आता है। जो बुद्धि-प्रयोग हुआ उसमें संख्या का दबाव (Collective bargaining) था। यह साम्प्रदायिक सत्याग्रह का सिद्धान्त नहीं है। सामुदायिक सत्याग्रह में संख्या को शस्त्र नहीं बनाना चाहिए, आकार का दबाव नहीं डालना चाहिए। पहले प्रार्थना का उदाहरण दिया है। एक लाख आदमियों की प्रार्थना में और एक लाख आदमियों की सेना में संख्या एक है, लेकिन भूमिका में अन्तर है। सत्याग्रह में सामूहिक आन्दोलन (Mass Agitation) का अर्थ यदि संख्या का दबाव है, तो वहाँ संख्या का महत्त्व बढ़ता है मनुष्य

महत्त्व कम हो जाता है। समूह में मनुष्य खो जाता है। इसके परिणामस्वरूप समूह में व्यक्ति की मानवता कम हो जाती है।

'सामुदायिक सत्याग्रह' शब्द तो है लेकिन उसका अर्थ समझ लेना ...री है। सामुदायिक सत्याग्रह का अर्थ Mass (समूह) का सत्याग्रह नहीं ... सह-सत्याग्रह है। मिलकर या युक्त-सत्याग्रह करते हैं जैसे सामुदायिक ...पना करते हैं। दोनों के उद्देश्य में फरक हो गया है, पद्धति में भी ...क हो गया है। हड़ताल या निःशस्त्र प्रतीकार (Passive Resis...nce) म उद्देश्य यह होता है कि हमारी बात हमारा प्रतिपक्षी मान ... आप केवल इतनी मर्यादा का पालन करते हैं कि उसकी जान माल ...ी को चोट नहीं पहुँचायेंगे। आप इसके लिए अपना प्राण भी ... को तैयार हैं। लेकिन चाहते यह हैं कि वह आपकी बात मान ले।

...त्यनिष्ठा की शर्तें

लेकिन इसमें एक दोष रहता है और वह यह कि प्रतिपक्षी के मत के ...ा आपके मन में कोई आदर नहीं है। प्रतिपक्षी के पक्ष में जो कुछ ...य होगा उसको समझने की कोशिश नहीं है। सत्याग्रह में पापी और ...ाधी मनुष्य के लिए भी स्नेह रहता है प्रतिपक्षी के दृष्टिकोण के प्रति ...दर रहता है। ऐसी अवस्था में भी सत्याग्रह होता है। दूसरे पक्ष की ...त्यनिष्ठा म मुझ विश्वास करना होगा, इसलिए हमेशा मेरी तैयारी ...नी चाहिए कि उनके पक्ष में छिपे हुए सत्य को देखूँ पहचानूँ।

सत्याग्रह में एक प्रसंग ऐसा आ सकता है जहाँ मुझे मालूम होता है कि ...तिपक्षी की बात सही है और मेरी गलत है। तब मुझे अपने स्वाभिमान या ...भाव की भावना को छोड़कर सत्यनिष्ठा के कारण अपनी बात छोड़नी ...गा उनकी बात मान लेनी होगी। क्योंकि मैं लगातार सत्याग्रह करते ... भी कोशिश करता रहा हूँ कि उनकी बात समझूँ। इसलिए दिन ... उत्थान बन रहा है और हर क्षण मेरी कोशिश है कि इसलिए दिन

से पहले कभी भी जिस क्षण मुझे मालूम हो जायगा और मेरी बुद्धि स्वीकार कर लेगी कि उसका कहना सही है, मेरा गलत है, उस क्षण मैं अपना उपवास तोड़ दूंगा। इससे मेरी प्रतिष्ठा और इज्जत को कोई धक्का नहीं पहुंचनेवाला है, क्योंकि प्रतिष्ठा और इज्जत जो भी है, वह सत्य की है, मेरी नहीं। इसे मैंने शुद्ध बुद्धि कहा। शुद्ध बुद्धि में अहंकार नहीं है, मेरा आग्रह नहीं है। विनोबा ने हमको एक सूत्र बतलाया था—आग्रह सत्य को करने दो, तुम अपना आग्रह मत रखो। तुम अपना आग्रह हटाओगे तो सत्य के आग्रह का दर्शन होगा। सत्य में अगर तुम्हारा आग्रह रहेगा तो सत्य के दर्शन नहीं होंगे, तुम्हारा ही आग्रह रह जायगा।

विध्वंस अमान्य

सत्याग्रह में आघात या विध्वंस की वृत्ति नहीं होती है। थोड़ी बहुत हानि होगी और वह भी उतनी ही कि जितनी अनिवार्य हो, लेकिन उससे सत्याग्रही को दुःख होगा। वह तो यही कोशिश करेगा कि जो हानि होगी वह मेरी ही हो, प्रतिपक्षी की न हो। लेकिन जिसे रोकने में वह लाचार हो जाता है, हानि हो जाती है, उसके लिए वह दुःख करता है, प्रायश्चित्त करता है। इसलिए सत्याग्रह विध्वंसक और घातक न हो, यह सत्याग्रह का एक और लक्षण है।

प्रतिपक्षी की तेजोरक्षा

प्रतिपक्षी को वह परास्त करना नहीं चाहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह प्रतिपक्षी को अपनी ओर मिलाना चाहता है, प्रतिपक्षी को स्वकीय बनाना चाहता है। प्रतिपक्षी यदि परास्त होता है, हतवीर्य होता है, तो ऐसे हताश और हतवीर्य व्यक्ति के आपके पक्ष में आने से क्या आपकी शक्ति बढ़ेगी? वह तो मुर्दा भारभूत बन जायेगा। वह आपका साथी नहीं बन सकता। सत्याग्रह तो प्रतिपक्षी को अपना सहयोगी बनाने

के लिए है। इसलिए सत्याग्रह में परास्त करना नहीं है, और निर्बलता पलायन और शरणागति भी नहीं है। वह अपने लिए भी नहीं है, दूसरे के लिए भी नहीं है। क्षत्रियों का धर्म बतलाया गया है 'युद्धे चाप्यपला-यनम्'। क्षत्रिय को युद्ध से भागना नहीं चाहिए। सत्याग्रही कहता है कि मैं तो युद्ध से भागता नहीं हूँ लेकिन मेरे प्रतिपक्षी को भी युद्ध से भागना नहीं चाहिए। प्रतिपक्षी यदि युद्ध से भाग जाता है तो वह मत-परिवर्तन (Conversion) नहीं है। वह मेरा स्वकीय नहीं बनता है। इसीलिए अपरिमित प्रमाणमुक्त और अव्याख्य उद्देश्यों के लिए सत्याग्रह का प्रयोग नहीं होता। सत्याग्रह का उद्देश्य संदिग्ध नहीं होना चाहिए। इसलिए सत्याग्रह का उद्देश्य परखने की आवश्यकता होगी।

लोक-निष्ठा

सत्याग्रही जब कानून भंग करता है, तब वह विनत होकर वैसा करता है। क्योंकि वह सभ्य नागरिक है, समाज के नियमों का आदर करना चाहता है। समाज के नियमों का पालन दण्ड के भय से नहीं या शिष्टाचार के नाते भी नहीं समाज निष्ठा के कारण करता है। यह लोक-निष्ठा है। नियम-पालन की उसकी प्रेरणा उसकी अपनी लोकनिष्ठा है। समाज के किसी नियम को तोड़ने का जब प्रसंग आता है तब उसको उतना ही दुःख होता है जितना नियम बनानेवाले को होता है। वह सिविल (विनयमुक्त) और अनसिविल (अविनययुक्त) कानून-भंग (Disobedie ce) में अन्तर है। Civil Disobedience केवल निःशस्त्र प्रतीकार नहीं है क्योंकि वह विनययुक्त है। विनययुक्त से मतलब है कि जो संस्था नियम बनाती है उस संस्था की बुद्धि और उसके हृदय के आशय के लिए मेरे मन में आदर है। और जहाँ वह संस्था लोक-नियुक्त हो वहाँ तो इतना अधिक आदर है कि मुझे कोई भी कानून तोड़ने में बहुत अधिक संकोच होगा।

विनय पर ज़ोर

सिविल के दो अर्थ हैं—मिलिटरी विरुद्ध सिविल' क्रिमिनल विरुद्ध सिविल। एक तो जिसमें सैनिकता का अंश कम है, 'नागरिकता' का अंश अधिक है। नागरिक वह है जो नागरिकता के नियमों की मर्यादाओं का और अनुशासन का पालन करता है, लेकिन दण्ड के भय से नहीं। मार्शल लॉ में और सिविल लॉ में यह अन्तर है। दूसरा यह कि सत्याग्रही अनसिविल (अविनयी) नहीं है, असभ्य नहीं है। इस दृष्टि से उसके कानून-भंग में और दूसरे के कानून-भंग में मूलभूत अन्तर पड़ जाता है। गांधी ने कहा कि मेरा सविनय कानून-भंग में, विनय पर ज़ोर है। कानून भंग होगा लेकिन वह विनययुक्त होगा। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिपक्षी को कम-से-कम दुःख पहुँचाने की भावना आती है। यदि प्रतिपक्षी को अधिक-से-अधिक दुःख होता है, तो इसका अर्थ हुआ कि मैं दुःख पहुँचाने के लिए व्यक्ति का प्रतीकार कर रहा हूँ और उसको दुःख देकर किसी तरह झुकाना चाहता हूँ।

सत्याग्रह विघ्ननीति (Obstructionism) नहीं है। सत्याग्रही का उद्देश्य होता है प्रतिपक्षी की अनाचार और अन्यायमूलक व्यवस्था को असम्भव कर देना लेकिन प्रतिपक्षी के जीवन को असम्भव कर देना नहीं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सत्याग्रह के कारण प्रतिपक्षी का जीवन असम्भव हो जाय जैसे मजदूरों और विद्यार्थियों के सत्याग्रह में होता है। मालिक या वाइस चान्सलर के घर के बाहर धरना देते हैं घर से वह बाहर भी निकल नहीं पाते लड़की बीमार हो जाती है तो दवा भी नहीं आ सकती। तभी उसके मन में भय पैदा होता है। यह सब सत्याग्रह नहीं है।

निर्भयता का आश्वासन

जिस सत्याग्रह में प्रतिपक्षी के मन में भय पैदा होता है, तो मान

देखना चाहिए कि उसमें सत्य का आग्रह कम है अपना आग्रह अधिक है। प्रतीकार अधिक है, अहिंसा कम है। यह उसकी एक कसौटी है। यह देखना चाहिए कि सत्याग्रह का परिणाम प्रतिपक्षी पर क्या होता है। प्रतिपक्षी भले यह चाहे कि सत्याग्रह चलने न पाये लेकिन वह इतना अवश्य समझेगा कि उसे आपसे डरने की आवश्यकता नहीं है।

सहयोग की तैयारी

सत्याग्रह का प्रसंग छोड़कर बाकी जितने भी सहयोग के प्रसंग आपके और उस प्रतिपक्षी के जीवन में आयें वहाँ सब जगह आप उससे सहयोग करेंगे सहयोग का अवसर खोजेंगे। यह सत्याग्रह की मर्यादा का अंश है।

गांधीजी यही करते थे। रौलट ऐक्ट स्वराज्य कम्यूनल अवार्ड आदि किसी एक बात को लेकर सत्याग्रह करते थे लेकिन सरकार को मदद करने के जितने मौके मिल सकते थे वह सब खोजते थे। सरकार यानी सरकारी अधिकारी लोग या सत्ताधारी लोगों की मदद जितनी कर सकते थे उतनी करते थे। इससे सद्भाव पैदा होता है, एक अनुकूल वातावरण निर्माण होता है। इसकी आवश्यकता विशेष रूप से वहाँ होती है जहाँ पर आपकी प्रतिपक्षी संस्था ऐसी हो जो लोक-नियुक्त है। आपके मन में लोगों के लिए आदर है और वह संस्था लोक-नियुक्त है। लोगों का मत-परिवर्तन आप नहीं कर सके ऐसी परिस्थिति में उस संस्था के लिए आपके मन में जो आदर है वह आपके सत्याग्रह में भी प्रकट होना चाहिए तब आपका सत्याग्रह विनययुक्त है अन्यथा वह विनययुक्त नहीं है।

प्रतीकार में सद्भावना

हमने शुरू में ही आत्मिक प्रतीकार और निःशस्त्र प्रतीकार का अन्तर बताया है। निःशस्त्र प्रतीकार देखने में सत्याग्रह जैसा मालूम होता है। दोनों में बाह्य समानता है इसलिए दोनों का अन्तर समझ लेना

चाहिए। इसका समाज में परिणाम या निष्पत्ति क्या है? गांधीजी के जीवन में जितने प्रयोग हुए, उनका क्या परिणाम है? उसकी निष्पत्ति यह है कि गांधीजी ने प्रतीकार के क्षेत्र में मानवव्यापी सार्वभौम सद्भावना का आरम्भ कर दिया। गांधीजी से पहले ऐसी व्यापक सद्भावना का प्रवेश प्रतीकार के क्षेत्र में *नहीं हुआ था उन्होंने किया।* उन्होंने प्रतीकार की ऐसी एक पद्धति दी जिसमें प्रतीकार तो हो लेकिन प्रतीकार का आरम्भ भी सहयोग के रूप में हो और अन्त भी सहयोग में हो। यानी पद्धति ऐसी हो जिससे दोनों प्रतिपक्षियों की सहकार-शक्ति बढ़े।

कसौटी

यह केवल विरोध का साधन नहीं है, बल्कि ऐसा साधन है जिसका आरम्भ सत्याग्रही की तरफ से सहयोग की भावना से होता है और सत्याग्रह सफल होता है, तो उसके परिणाम-स्वरूप मेरी और प्रतिपक्षी की दोनों की सहयोग वृत्ति और शक्ति बढ़ती है। यदि एक की शक्ति बढ़ती है और दूसरे की शक्ति क्षीण होती है, तो यह सत्याग्रह नहीं है। सत्याग्रह की सम्पूर्ण सफलता तब मानी जा सकती है, जब दोनों की शक्ति बढ़े दोनों की वृत्ति का विकास हो और दोनों के हृदय ज्यादा पवित्र बनें। गांधीजी ने यह नया दर्शन दिया। उनके पहले समाज में यह नहीं था।

व्यक्तित्व विच्छिन्न न हो

इसमें एक और बहुत महत्त्व की चीज उन्होंने दी और वह यह कि व्यक्तिगत नीतिमत्ता और व्यापक नीतिमत्ता में कोई अन्तर नहीं है। यह एक बहुत महत्त्व का संकेत है। पहले के देश-भक्तों को हम जानते हैं। वे अपने व्यक्तिगत जीवन में अत्यन्त शुद्धि और अत्यन्त सत्यनिष्ठा रखते थे लेकिन सार्वजनिक जीवन में प्रतिपक्षी के साथ किसी प्रकार का असत्यपूर्ण व्यवहार करने में हिचकते नहीं थे निःसंकोच असत्य व्यवहार करते थे। उनका

जीवन दोहरा था। गांधीजी ने उस दोहरे जीवन का अन्त कर दिया। व्यक्तिगत जीवन का तथा सार्वजनिक जीवन का उनका पैमाना एक ही था। दोनों क्षेत्र की नीतिमत्ता में भले ही थोड़ा भेद हो पर विरोध नहीं हो सकता। व्यष्टि की और समष्टि की विश्व की और राष्ट्र की नैतिकता एक होगी। सार्वजनिक जीवन में और राजनैतिक क्षेत्र मे गांधी के पहले इसका प्रयोग किसीने नहीं किया सिद्धान्त के रूप में भी किसीने यह नहीं सोचा।

साध्य-साधन विवेक

तीसरी चीज साध्य के अनुरूप साधन होना चाहिए। आध्यात्मिक क्षेत्र में यह कहा जा सकता था लेकिन व्यवहार के क्षेत्र में पहले पहल गांधी ने ही यह कहा कि साध्य भी शुद्ध होना चाहिए और उसका साधन भी शुद्ध ही होना चाहिए। 'साध्यानुरूप साधन' — यह सार्वजनिक जीवन के लिए गांधीजी की एक देन (Contribution) है।

गांधी की विशेषता

यह सब उनका अहिंसात्मक प्रतीकार का विधान था उनका कर्म प्रयोगात्मक था। गांधी केवल कर्मयोगी ही नहीं थे प्रयोगी भी थे। जिन आदर्शों का कथन किया प्रयोग द्वारा उनका परीक्षण करने में वे कभी पीछे नहीं थे। इसे ही प्रयोग-सिद्ध विज्ञान कहते हैं। कहते थे कि पहले काल्पनिक समाजवाद (Utopian Socialism) था फिर वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific Socialism) आ गया। प्रयोगसिद्ध समाजवाद को उन लोगों ने वैज्ञानिक समाजवाद कहा। गांधीजी ने अपने जीवन मे जितने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उन सबका जीवन में प्रयोग भी किया प्रयोग करने की तत्परता भी थी। वे बराबर कहते रहे कि इसका प्रयोग होना चाहिए, अभी मैं नहीं कर पा रहा हूँ। इसमें उनकी वैज्ञानिक तटस्थता थी। वे

कहते थे कि अहिंसा की परीक्षा मैंने की है और मैं अपूर्ण और दोषपूर्ण सिद्ध हुआ हूँ पर अहिंसा दोषपूर्ण सिद्ध नहीं हुई है। तो इस प्रकार उन्होंने एक प्रयोगसिद्ध, वैज्ञानिक अहिंसात्मक प्रामाणिक सिद्धान्त तथा अहिंसात्मक प्रयोग और पुरुषार्थ का मार्ग समाज को दिखाया। यह वस्तु इसके पहले नहीं थी।

कर्मकाण्ड और सत्यनिष्ठा में अन्तर

गांधीजी ने यह जो सब कुछ किया वह कोई सत्याग्रहियों का एक संप्रदाय स्थापित करने के लिए नहीं था। इसका हेतु दूसरा ही था और उसे समझ लेना आवश्यक है। नहीं तो धर्म-पंथ और सामाजिक कार्यों में जो संकीर्णता फैली हुई है, वही संकीर्णता की मनोवृत्ति सत्याग्रह के प्रयोग में आवेगी। एक व्यक्ति खादी पहनता है हाथ-कुटा चावल खाता है ग्रामोद्योग की वस्तुओं के सिवा दूसरी किसी चीज का व्यवहार नहीं करता है। लेकिन मक्कारी करता है, चोरबाजारी करता है, झूठ बोलता है। सत्याग्रहियों का चुनाव करना होता है, तो वह आकर कहता है कि मैं खादी पहनता हूँ शुद्ध घी-दूध का ही व्यवहार करता हूँ ग्रामोद्योग की चीजों के सिवा कुछ भी इस्तेमाल नहीं करता' और लोग समझ लेते हैं कि वह सत्याग्रही है। दूसरा एक व्यक्ति है जो सत्य का पालन करता है, अहिंसा का आचरण करता है, लेकिन खादी आदि कर्मकाण्ड का पूरा पालन नहीं कर रहा है तो वह सत्याग्रही नहीं हो सकेगा। इससे होगा यह कि सत्य किनारे रह जायेगा और कर्मकाण्ड (Ritualism) की बाढ़ आ जायगी। कर्मकाण्ड ऐसी चीज है जो सत्य को आवृत कर देती है, संगठन का आवरण सत्य को ढँक देता है। उपनिषत्कारों ने हिरण्मय पात्र का वर्णन किया है कि वह सत्य का ढक्कन है। ये संगठन संस्थाएँ और संप्रदाय सब सत्य को ढँक देते हैं सत्याग्रह किनारे रह जाता है। गांधी के रास्ते पर चलना चाहनेवालों को भी यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारे व्यवहार के किसी भी नियम या मर्यादा की अपेक्षा मानवता श्रेष्ठ

। 'यम और नियमों की मर्यादा का उल्लेख पहले आ चुका है। र पंथ और सम्प्रदाय में आग्रह 'नियम' का होता है यम का नहीं। त्यनिष्ठा में आग्रह 'यम' का होना चाहिए, उसके बाद नियम होगा। लिए गांधी ने यमों को ही व्रत बनाया। जितने व्रत थे उनमें यम भी एक नियम माना। ये सार्वभौम यम माने गये मनुष्य के र मान गये। गांधी के पहले इसको किसीने व्रत नहीं माना था। गांधी उसे एक सामाजिक मूल्य बना दिया। गांधी की सत्यनिष्ठा और यथा- र्थ का यह एक नया ढंग था। इस दृष्टि से सत्याग्रह का भी विचार रना चाहिए। सत्याग्रह को लोकव्यापी बनाना चाहिए।

सत्याग्रही वर्ग नहीं मानव

सत्याग्रह सशस्त्र सेना की तरह एक वर्ग बनाने के लिए नहीं है। जिस ार युद्ध क्षत्रियों का धर्म है उस प्रकार सत्याग्रह चुने हुए मुट्ठी भर का धर्म नहीं है। सत्याग्रही चुने हुए होते हैं तो उसमें अधिकार शामिल जाता है और इससे सत्याग्रह में अड़चन होती है। सत्याग्रहियों की टन नहीं होती सह-सत्याग्रह होता है। सत्याग्रह में व्यक्ति का मूल्य सेना में सेना का मूल्य है व्यक्ति का नहीं। सैनिकशास्त्र में यह सिद्धान्त है कि पूरी सेना यानी सेना का प्रत्येक सिपाही बहादुर हो यह आवश्यक नहीं है। सैनिकों में दूसरा एक बड़ा दुर्गुण होता है कि वे भूतों बहुत डरते हैं। उन लोगों के चित्त में कई तरह के अन्ध-विश्वास रहते । सत्याग्रही का हृदय सत्यनिष्ठा के कारण निर्भय होता है। निर्भयता का आधार है। इसलिए मैंने यह अन्तर बताया कि जो सत्यनिष्ठ ा वह केवल शान्तिप्रिय नहीं होता वह मानवनिष्ठ होगा। कम-से- इतना तो है कि दूसरे मनुष्य के प्रति उसकी सद्भावना होगी। हर पाही बहादुर हो यह सेना के लिए आवश्यक नहीं है लेकिन सामु- हिक प्रार्थना में इतना आवश्यक है कि उसमें बैठनेवाला हर मनुष्य वरनिष्ठ हो। अगर वह ईश्वरनिष्ठ नहीं है, तो सामुदायिक-प्रार्थना में

भाग नहीं ले सकता। इस प्रकार सामुदायिक सत्याग्रह में इतना आवश्यक है कि हर सत्याग्रही सत्यनिष्ठ हो।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न

सत्यनिष्ठा के साथ-साथ हमने एक और चीज भी जोड़ दी है कि हर आदमी सत्यनिष्ठ भी हो साथ ही लोकनिष्ठ भी हो। क्या इस सत्याग्रह का प्रयोग और विनियोग राष्ट्र-रक्षा में हो सकता है? सीमातिक्रमण के विरोध में या राष्ट्र रक्षा में सत्याग्रह का प्रयोग या विनियोग करने का अवसर गांधी को नहीं मिला। सत्याग्रह की शक्ति का जितना विकास गांधी और गांधी के साथी कर सके वह इस नये सन्दर्भ में परीक्षण के लिए पर्याप्त नहीं हुआ है। इसके लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता है। लेकिन क्या इसकी संभावनाएँ संभाव्य हैं?

इस बारे में दो-तीन लोगों ने चर्चा की है। एक बड़ी पुस्तक है—Defence in the nuclear age। इसमें यह विचार किया गया है कि अगर इंगलैण्ड पर आक्रमण हो तो इंगलैण्ड क्या करे। इस पुस्तक के लेखक स्टीफेन किंग हॉल दूसरे महायुद्ध में एक सेनापति थे। वे इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि अब अगर युद्ध हुआ तो शस्त्र संरक्षण सभी राष्ट्रों के लिए सम्भव है लेकिन इंगलैण्ड के लिए बिलकुल असम्भव है। फिर क्या अहिंसात्मक प्रतीकार या सत्याग्रह से राष्ट्र की रक्षा हो सकती है? इस लेखक का कहना है कि हो सकती है। पुस्तक में इस व्यावहारिक समस्या के प्रत्येक अंग का विवेचन है, नक्शा है और पद्धति है। अर्नेस्ट गुमार्क की एक और पुस्तक है—Paths to freedom through non-violence। इसी प्रकार की और भी कई पुस्तकें हैं जहाँ इस समस्या पर विचार किया गया है। यहाँ भारत में भी इस पर गहराई से चर्चा करना आवश्यक है। यदि इसका प्रयोग साम्यवादी और अधिनायकवादी राष्ट्रों से करना है तो कुछ फरक भी करना होगा। ●

११-५-६ (अनुवाद)

होता है। सर्वोदय में आस्था और निष्ठा रखनेवाले सब युवकों और युवतियों के करने योग्य काम यही है। सामाजिक परिस्थिति परिपक्व करने के लिए पुरुषार्थ करने का आज अवसर है। आज अवसर इसलिए है कि इस राष्ट्र में नामवान् और बुद्धिमान लोग उतनी संख्या में नहीं आ रहे हैं जितनी संख्या में आने चाहिए। उनकी सहानुभूति और आशीर्वाद है पर जिस मात्रा में सक्रिय सहयोग होना चाहिए, उस मात्रा में वह प्राप्त नहीं है। इसमें हमारे पुरुषार्थ के लिए अधिक अवसर है। केवल एक मर्यादा हम रखनी होगी कि इस कार्य में हमको सबका सहयोग लेना है लेकिन आपस विरोधोंका नहीं लेना है। उनके हम-सहभागी होवें आश्रित नहीं होवें। यह एक महत्त्व का सिद्धान्त है।

आशा-स्थान

आज हमारे कार्यकर्ताओं को शिकायत है कि सभी राजनैतिक पक्ष हमारे काम को आशीर्वाद तो देते हैं लेकिन प्रत्यक्ष सहयोग नहीं करते। समाज में जो नेता प्रतिष्ठित हैं जिन नेताओं ने आज तक समाज में काम किया है वे नेता शुभकामना का प्रदान करते हैं लेकिन प्रत्यक्ष सहयोग उनका भी कम मिलता है। मेरी धारणा ऐसी है कि उन नेताओं और प्रतिष्ठित व्यक्तियों का आशीर्वाद भी बहुमूल्य है। उसको लेकर हमको आगे बढ़ना चाहिए। उससे अधिक की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। काम समाज का है उसमें हम मतानुकूल लगे हुए हैं। जितना हमारा पुरुषार्थ और प्रयत्न होगा उतनी सफलता मिलेगी। आज ऐसा होता है कि हमारा जितना प्रयत्न और पुरुषार्थ होता है, उससे ज्यादा सफलता हमको मिलती है। हम लोग साधारण से भी कुछ निकृष्ट हैं। बुद्धिमत्ता, शासन-सम्पन्न आर्थिक शक्ति, संगठन की शक्ति में सब संसार के किसी देश के लोगों की तुलना में हमलोग बहुत कम हैं। इसके बावजूद जितनी सफलता इस आन्दोलन को मिली है वह हमारे लिए एक आशा का विषय है। जयप्रकाश बाबू जैसे हजार देशभक्त लोगों को छोड़ें तो हमें

कोई विशेष परिचित नहीं है। हम लोग अंग्रेजी में कुछ लिखते भी नहीं हैं कभी लिखते हैं तो वह भी बहुत कम। ऐसा होते हुए भी देश और विदेश के तरुण और वृद्ध विनोबा की पदयात्रा में शामिल होने के लिए आते हैं इसके रहस्य को समझने की आकांक्षा ले आते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि आज की परिस्थिति में एक आकांक्षा है आवश्यकता है। यह केवल इस देश की परिस्थिति में नहीं जागतिक परिस्थिति में है। विनोबा पहले से विश्व-विख्यात नहीं थे पर आज सारे संसार में लोग उनका नाम जानते हैं। यह सब हमारी क्रान्ति के प्रभाव-चिह्न हैं।

हमारी प्रेरक भूमिका

दूसरी ओर से देखें तो हम को सफलता मिली है, वह तो अत्यल्प है। फिर भी इस देश में कम-से-कम अप्रिय कोई कार्यकर्ता है तो वह हमारा कार्यकर्ता है। अधिक-से-अधिक लोकप्रिय है—ऐसा नहीं कह रहा हूँ। जिस कार्यकर्ता के विषय में सन्देह और अप्रियता कम-से कम हो ऐसा कार्यकर्ता सर्वोदय का कार्यकर्ता है। इसका मुख्य कारण यह है कि हम लोगों ने सत्ता की आकांक्षा नहीं रखी। हमारा आन्दोलन सत्ता-निरपेक्ष राजनैतिक आन्दोलन है। इस देश में सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति को बदलने के लिए होनेवाले सारे आन्दोलन भी राजनैतिक आन्दोलन ही हैं। यह लोकव्यापी राजनीति है। दलगत या संस्था-सीमित राजनीति नहीं। सब राजनीति मतदाता (वोटर) तक ही होती है, लेकिन क्या मतदाता (Voter) हो जनता है? मतदाता भी समस्त लोग या समस्त जनता नहीं है समस्त जनता मतदाताओं तक सीमित नहीं है। इसलिए जो आन्दोलन लोकव्यापी होता है वह वास्तविक राजनैतिक आन्दोलन होता है। इसमें हमारे लिए एक कठिनाई है एक सुविधा भी है। कठिनाई यह है कि साधारण मनुष्य को हम कुछ दे नहीं सकते हैं। हम कुछ देने या उसके लिए कुछ करने नहीं आते हैं, उससे कुछ लिवाने

और कराने के लिए आते हैं। जो देने या करने नहीं आते केवल दिखाने के लिए आते हैं उनके लिए एक सुविधा है। लोग बहुत जल्दी उसके अभिमुख नहीं होते हैं। लोगों से हम यह नहीं कह सकते कि आपके लिए हम सड़क बनवा देंगे अस्पताल खुलवा देंगे या स्कूल चालू करा देंगे। हमारे पास ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसका उनको आश्वासन दे सकें। इस देश के सार्वजनिक कार्यकर्ता का यह प्रमुख दोष माना गया है कि वह आश्वासन देता है। उन आश्वासनों की पूर्ति करने के लिए उसमें शक्ति कम है। हम अपनी ओर से जितनी सेवा कर सकें करें आश्वासन बिलकुल न दें। ग्रामदान हो तो भी हमारी तरफ से कोई आश्वासन नहीं हो। इससे ग्रामदान कम होंगे। संख्या कम होगी लेकिन गुण अधिक होगा। यह क्रान्ति गुणात्मक होनी चाहिए। इस दृष्टि से यह अधिक महत्त्व का एक गुण है।

लोक-शिक्षण

लोकतन्त्र में मत का महत्त्व समझाना अधिक आवश्यक है। मत दाताओं का यह शिक्षण कौन करेगा ? सारे राजनैतिक पक्षवाले कहते हैं कि चुनाव का अवसर मतदाताओं के शिक्षण का अवसर है। आपने लोगों को समझाया कि वोट बहुत महत्त्व की वस्तु है स्त्री के लिए सतीत्व पुरुष के लिए उसका धर्म और ईमान और देश के लिए उसकी स्वतन्त्रता जितना महत्त्व रखती है उतना महत्त्व मतदाताओं के लिए वोट है—यह उन्हें समझाया। लोगों ने इस पर ध्यान दिया और अन्त में आपने कहा कि हमें अपना वोट दीजिये। तब सब पर पानी फिर जाता है। किया-कराया मिट्टी में मिल जाता है। सारी रामायण सुनाकर यह कह दें कि यह सब दक्षिणा के लिए किया तो उसका क्या परिणाम होगा ? लोकतन्त्र में मत-याचना करनेवाला आदमी लोक-शिक्षण नहीं कर सकता है। इसलिए यह लोक-व्यापी राजनीति (People Politics) है। लोगों को लोकतन्त्र का महत्त्व समझाइए। नहीं तो चाहे

जितना विकेन्द्रीकरण हो फिर भी पार्लियामेण्ट में जो खराबियाँ और बुराइयाँ हैं वे ही पंचायत में आयेंगी। पार्लियामेण्ट में जो सत्तावाद (Power Politics) है, वही पंचायत में आयेगा। हमें भ्रष्टाचार का *विकेन्द्रीकरण नहीं करना है। लोकतन्त्र की बुनियादों को शुद्ध करना है।*

इन बुनियादों को वही शुद्ध करेगा जो स्वयं उम्मीदवार नहीं है, जो स्वयं मत का याचक नहीं है और जो मतों के विषय में निःस्पृह रहता है। इसलिए हमें चुनाव में भाग न लेने की अपनी मर्यादा का ध्यान रख कर मतदाता का शिक्षण देने का काम करना है। लोकतन्त्र में वोट या मत का क्या महत्त्व है, यह उसे समझाना है। ब्राह्मण वोट, भंगी वोट, अमीर वोट और गरीब वोट ये सब अदालत के सामने एक हैं। लोकतन्त्र *में मनुष्य-मात्र समान है। मनुष्य-मात्र की समान भूमिका आत्म-गौरव की* वस्तु है। इसमें आत्मा की प्रतिष्ठा बढ़ती है। यह आत्म-गौरव की प्रतिष्ठापना लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है। लोगों को यह समझाना है।

विरोध-सहन

इस प्रकार से काम करनेवालों को बहुत दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा। यह केवल त्याग से होनेवाली चीज नहीं है। जब लोग समझेंगे कि ये कार्यकर्ता सत्ता के प्रति निःस्पृह हैं, विनयशील और लोकनिष्ठ हैं तब सत्तावादी समुदाय उनका विरोध करने लगेगा। वे उन्हें अपने प्रतिस्पर्धी समझेंगे, प्रतिस्पर्धी गद्दी के लिए नहीं, लोकनिष्ठा के लिए। आपको लोकनिष्ठा प्राप्त होगी, लोग चुनाव में जीतते जायेंगे। प्रतिनिधि अलग होता है। और लोगों का मित्र और नेता अलग होता है। चुनाव *में जो जीतता है वह हमेशा नेता ही हो, यह जरूरी नहीं है।* कांग्रेस हमेशा चुनाव में जीतती चली जा रही है, लेकिन उसकी शक्ति भी क्षीण होती चली जा रही है। चुनाव में जीतना अलग चीज है, लेकिन यानी वास्तविक प्रतिनिधित्व और नेतृत्व बिलकुल अलग चीज है।

समभाव-वृत्ति

लोकसेवा और राजनैतिक सत्तावाद (Political careerism) में अन्तर है। मूलभूत लोक-सेवा की बात पदअधिकार के बराबर कठिन काम है। बहुत लोग हिम्मत हारते हैं। हो सकता है कि हम भी हिम्मत हारें। जो निराश हो जाते हैं या भिन्न विचार स्वीकार कर लेते हैं उनके विषय में हमारे मन में किसी प्रकार का असद्भाव नहीं होना चाहिए। बल्कि जब तक वे हमारे साथ रहे, उसके प्रति कृतज्ञता रखनी चाहिए, किसी प्रकार का विषाद नहीं होना चाहिए। इसमें मतनिष्ठता की कद्र करना आप सीखेंगे। जो छोड़कर जाते हैं उनके विषय में अनादर नहीं रहेगा उनके छोड़ जाने का आप पर कोई प्रतिकूल परिणाम नहीं होगा।

निरहंकारिता

लोग कहते हैं कि हमारे देश में अब कोई प्रामाणिक लोक-सेवक नहीं रह गया है। यह भी कुछ मात्रा में सही है। सरकार में भ्रष्टाचार है बाजार में भ्रष्टाचार है धार्मिक संस्थाओं में भ्रष्टाचार है सब क्षेत्रों में भ्रष्टाचार हो रहा है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक संस्था यही कहती है कि दूसरा भ्रष्ट है मैं पवित्र हूँ। यह अहं-पावित्र्यवाद (Self-righteousness) ही भ्रष्टाचार की चरम सीमा है। इसलिए आज इस देश में कुछ ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो यह कहेंगे कि हम संपत्ति-निरपेक्ष सत्ता-निरपेक्ष लोक-कार्य करेंगे। सम्पत्ति और सत्ता दोनों ही संस्था से अलग रहेंगे। लोक-कार्य का साधन न तो सम्पत्ति को मानेंगे न सत्ता को मानेंगे। आज यह कहने की हम आवश्यकता नहीं है कि रक्त-निरपेक्ष क्रान्ति लायेंगे क्योंकि देश में सभी पक्षवाले कहने लग गये हैं कि अब सशस्त्र क्रान्ति असम्भव है। आज ऐसे कार्यकर्ताओं का एक दल चाहिए, जो यह कह सके कि दूसरे सब जितने मक्कार हैं जितने भ्रष्ट हैं उतने ही हम भी भ्रष्ट हैं हम भी उसी मिट्टी के बने हुए हैं और इसीलिए

हमने तय किया है कि सत्ता-निरपेक्ष और सम्पत्ति-निरपेक्ष क्रान्ति के मार्ग का हम अनुसरण करेंगे।

जन-मानस का निर्माण

आज हमारे देश में कुशल नेताओं की कमी नहीं है। लेकिन इनमें से कोई भी आज यह कहने की हिम्मत नहीं कर रहा है कि इस देश में दण्ड-निरपेक्ष रक्षण हो सकता है, इस देश में नागरिकों के रक्षण के लिए पुलिस की आवश्यकता नहीं है। इंग्लैण्ड में आणविक अस्त्रों के परीक्षण के विरुद्ध जुलूस निकलते हैं, प्रत्यक्ष प्रतिक्रियात्मक आन्दोलन होता है। हमारे देश में नहीं हो सकता है। क्योंकि हम लोगों में प्रत्यय और प्रतीति (Consciousness और confidence) पैदा नहीं कर सके हैं। इसके लिए किसी एक क्षेत्र को चुनने की आवश्यकता होगी। एक कार्यकर्ता चुनें या अनेक कार्यकर्ता चुनें। वहां ऐसा बनायें जहां पुलिस केस और अदालत की जरूरत नहीं होगी, एक भी मुकदमा अदालत में नहीं जायेगा, एक भी मामला पुलिस में दर्ज नहीं होगा। ऐसे इलाके अगर देश में कुछ जगह पैदा कर सकें तो देश में एक प्रत्यय पैदा होगा, आत्मविश्वास पैदा होगा। और उसके भरोसे लोगों से हम कह सकेंगे कि देश का संरक्षण नागरिक के साहस से होगा। नागरिक में साहस और बलिदान की शक्ति होती है तो यही देश का असली संरक्षण है। इस प्रकार की कुरबानी या आत्मोत्सर्ग के लिए नागरिक की मनोवृत्ति पैदा होनी चाहिए और यह पैदा करना हमारा काम है। नहीं तो लोकतंत्र गायब हो जायगा। मुख्य बात ध्यान में रखने की यह है कि हमारा यह क्रान्ति का कार्य मानव-निष्ठ कार्य है, इसकी विभूति साधारण मनुष्य है।

लेखक की अन्य रचनाएँ

सर्वोदय-दर्शन

'सर्वोदय' केवल तत्त्व और विचार नहीं, एक समग्र जीवन दर्शन है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नीतिपरक आदि अनेक पहलुओं से तटस्थ वैज्ञानिक की भाँति दादा धर्माधिकारी ने इस ग्रन्थ में सर्वोदय की शास्त्रीय व्याख्या की है। अनेक ग्रन्थियों, कुण्ठाओं, भ्रान्तियों को खोलनेवाली यह पुस्तक है। तीसरा संस्करण। पृष्ठ १९६ मूल्य ३ ।

अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया

लेखक की यह कृति करुणामूलक साम्ययोग प्रधान अहिंसक क्रान्ति के समझने के लिए अप्रतिम है। क्रान्ति और सो भी अहिंसक! अहिंसा की जीवनव्यापी विराटता और उसके लिए शक्ति-स्रोतस्विनी कल्याणिनी विधायक लोकनिष्ठ विभूतिमय क्रान्ति की प्रक्रिया को समझने के लिए हर व्यक्ति के काम की दिशाबोधक रचना।
पृष्ठ १९६ मूल्य ५ ।

स्त्री-पुरुष सहजीवन

स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध, स्वामित्व, उत्तरदायित्व, धार्मिक विधि विधानों की जीवनगत परिभाषाओं की सूक्ष्म आलोचना, परस्पर निर्भरता आदि का शास्त्रीय वैज्ञानिक भावनागत और मानवनिष्ठ विवेचन। मूल्यों के प्रकाश में जीवन का मूल्यांकन।
पृष्ठ [illegible] मूल्य [illegible] ।